चन्दामामा
दीवाली विशेषांक

Photo by D. I. Chanthamian

पुरस्कृत परिचयोक्ति

शरीर - शिक्षा

प्रेषिका :
सुदेश कोरपाल, मुरादनगर

मार्गो सोप
भृंगल
लावणी स्नो व क्रीम
दि कैलकटा केमिकेल कं० लि०
कलकत्ता-२९

चन्दामामा

विषय-सूची

*

इनके अलावा

मन बहलाने वाली पहेलियाँ, सुन्दर चित्र और कई प्रकार के तमाशे हैं।

दीवाली का
अभिनंदन

चन्दामामा

सम्पादक : चक्रपाणी

दीप-गान

दीप जला ले! दीप जला ले!
ज्योत जगा ले! फूल खिला ले!

गगन-लता के अंगों पर ये देख सितारों के गहने!
यह चलती निशि कनक-कुसुम से अंकित अवगुंठन पहने!

उन तारों के फूल खिला ले!
उन सपनों के दीप जला ले!

धरती पर देखो अँधियारा, जिसको छूकर जग काला;
हाथ हाथ को नहीं सूझता, कहाँ कहो रे! उजियाला!

कैसे कोई दीप जला ले!
कैसे मन का फूल खिला ले!

मिट्टी के दीप में श्रद्धा की बाती सुलगा लेना!
स्निग्ध हो उठेगा जग सारा, स्नेह-प्रेम रस भर देना!

बिछुड़े साथी गले मिला ले!
आज स्नेह का दीप जला ले!

वर्ष 4—अंक 3
नवम्बर 1953

दीपावली
विशेषांक

दीवाली की सीख
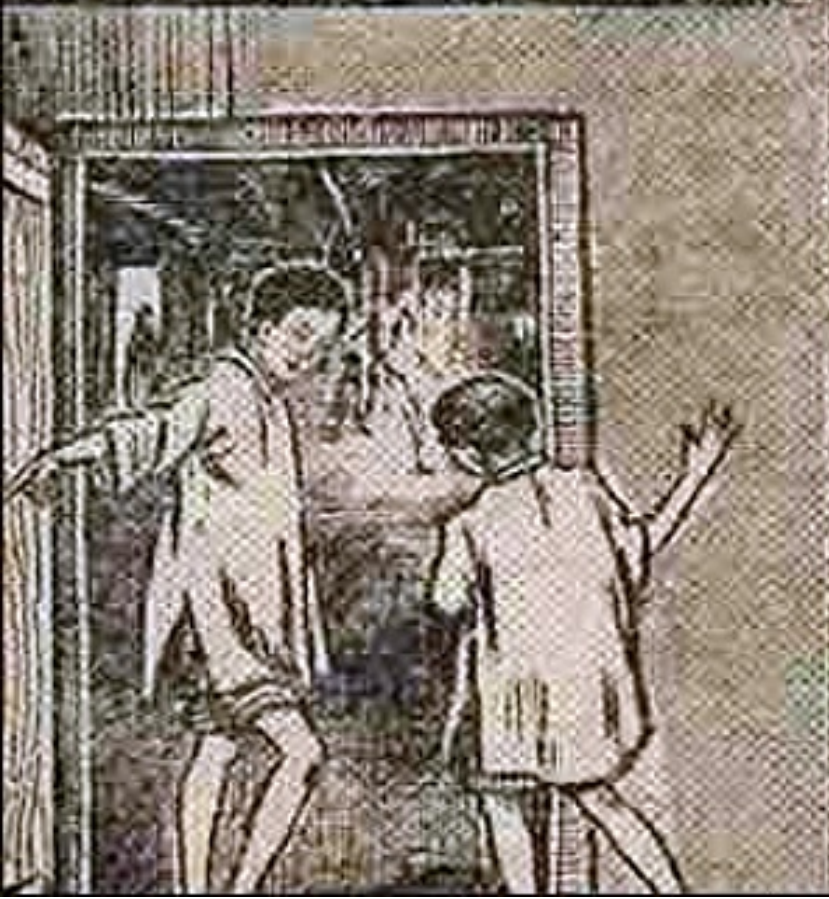
किसी गाँव में दो भाई थे,
उम्र न ज्यादा थी दोनों की।
सोलह बरस बड़े की थी तो
थी बस, तेरह ही छोटे की।

बड़ा चतुर था और हमेशा
रहता लगा स्वार्थ-पूजा में।
मौका मिला कि कामचोर बन
निकल गया हाथों से थामे।

एक बार दीवाली आई,
उनकी माँ बीमार पड़ी थी।
घर में और न कोई था, यह
कठिनाई आ पड़ी बड़ी थी।

घर-घर में रौनक छाई, पर
उनके घर छा रही उदासी।
सोचा दिन भर बैठ बड़े ने—
'कैसी पड़ी गले में फांसी ?'

साँझ हुई, घर-घर दीपक जल
उठे, जगमगा उठा गाँव भर!
उठा विचार बड़े के मन में—
'धूम-धाम देखूँ जा बाहर!'

'देख-भाल करता रह माँ की,
घर से कदम न रखना बाहर!
जरा घूम फिर कर लौटूंगा!'
दौड़ा बड़ा हुक्म यह दे कर।

बैठा रहा निकट ही माँ के
छोटा सारी बात भुला कर।
उसने सोचा नहीं कि उसका
भाई मौज उड़ाता बाहर।

दवा वक्त पर देकर सेवा
करने जगा रहा बेचारा।
घर का दीप ज्योति आँखों की,
सोचा—यह दीपोत्सव सारा।

उधर मौज में माँ की सुध ही
बड़ा भुला बैठा बस, पल में।
देख-देख कर आतिशबाज़ी
लगा उछलने उस हलचल में।

इतने में नन्ही चिनगारी
एक गिरी उसके कपड़ों पर।
आग लग गई, बदन जल गया,
बड़ा लगा रोने चिल्ला कर।

दौड़े लोग, ले गए लपटें
बुझा, वैद्य के यहाँ झपट कर।
मलहम-पट्टी हुई, बड़े को
छोड़ा उसके घर ले जाकर।

आहट सुन छोटे ने सोचा—
'भैया हैं!' दरवाजा खोला।
लज्जा से सिर झुका बड़ा चुप
खड़ा हो गया, तनिक न बोला।

मुख – चित्र

नरकासुर माता पृथ्वी और भगवान विष्णु का पुत्र था। पैदा होते ही उसने अपनी माँ से वर माँगा—'माँ! मुझे ऐसा वर दो जिससे तुम्हारे सिवा किसी के हाथों मेरी मौत न हो। किसी में मुझे मारने की शक्ति न हो।' उसकी माँ ने वैसा ही वर दिया। इस वर का प्रभाव ऐसा हुआ कि मनुष्य तो क्या, देवता भी उसका बाल बाँका न कर सकते थे। स्वयं भगवान भी उसका कुछ बिगाड़ न सकते थे। अब नरकासुर उच्छृंखल होकर विचरने लगा। वह ऋषि-मुनियों को सताने लगा। उसने देवराज इन्द्र को जीत कर भगा दिया और उनके सिंहासन पर अधिकार कर लिया। अंत में देवताओं और मानवों आदि सबने भगवान कृष्ण के पास जाकर अपना दुखड़ा रोया। भगवान ने उन्हें ढाढ़स बँधा कर कहा—'तुम लोग चिंता न करो! अपने अपने घर जाओ!' तब भगवान कृष्ण ने नरकासुर को मारने का निश्चय किया और सेना लेकर उसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर की ओर चले। उनके जाते वक्त देवी सत्यभामा ने हठ किया कि 'मैं भी साथ चलूँगी।' लाचार होकर भगवान उन्हें भी साथ ले गए। घमासान लड़ाई हुई। भगवान ने तरह तरह के अस्त्र चलाए। लेकिन नरकासुर पर कोई असर न हुआ। भगवान के तीर तो उसे छूकर फूलों की तरह गिर जाते थे। अन्त में नरकासुर का चलाया हुआ एक तीर भगवान की छाती में लगा और वे मूर्छित हो गए। सत्यभामा ने, जो उसी रथ में बैठ कर लड़ाई देख रही थी, यह देख कर झट धनुष-बाण हाथ ले लिए। उसके एक तीर ने नरकासुर का काम तमाम कर दिया। वह 'हाय माता! हाय माता!' कह कर गिर पड़ा। यह देख कर सत्यभामा के मन में वात्सल्य पैदा हुआ। इतने में भगवान की मूर्च्छा दूर हुई और उन्होंने बताया—'तुम पृथ्वी का अंश लेकर जन्मी हो। इसीलिए नरकासुर तुम्हें 'माँ! माँ!' कह कर पुकारते हुए मर गया। वर के प्रभाव से उसे तुम्हारे सिवा कोई नहीं मार सकता था।' नरकासुर के मरने की खबर सुनते ही सारे संसार में आनन्द छा गया और लोग दीप जला कर उत्सव मनाने लगे।

पसीने की कमाई

किसी गाँव में कचरू नाम का एक लुहार रहता था। वह अपनी दूकान में कुदाल, खुरपी, हँसिया आदि बना कर बेचता था।

लोहे के औज़ार बनाना कोई मामूली बात नहीं। भाथी चला कर भट्ठी को धधकाना होता है और लोहे को खूब तपाना होता है जिससे वह लाल हो जाए। उस तपते हुए लोहे को निहाई पर रख कर हथौड़े से पीटना होता है। हथौड़ा उठाने के लिए काफ़ी ताकत चाहिए। कचरू में ताकत भी थी और पसीना बहा कर कमाने का चाव भी था।

कचरू के लड़के का नाम कामू था। कामू बड़ा निठल्ला था। काम-काज का नाम सुनते ही उसकी नानी मर जाती थी। इसकी वजह उसकी माता थी। वह नहीं चाहती थी कि उसका बेटा लुहार का काम करे। उसकी इच्छा थी कि कामू भी अपने मामा की तरह पढ़-लिख कर बाबू बने और कोई नौकरी कर ले। इस इरादे से उसने किताब-पोथी खरीद दी और बेटे को स्कूल भेजा।

कचरू को यह सब पसन्द न था। वह चाहता था कि बेटा भी बाप-दादों का धन्धा करे। वह नहीं चाहता था कि बेटा बाबू बने। फिर भी उसने पत्नी की बात का विरोध नहीं किया।

कामू अब हर रोज़ स्कूल जाने लगा। लेकिन पढ़ना-लिखना उसमें प्यार न लगता था। कभी-कभी कचरू कहता—'बेटा! कम से कम भाथी तो चलाओ!'

लेकिन कामू उसकी बात पर कान न देता था। वह काम करने से ज्यादा मटरगश्ती पसन्द करता था। यहाँ तक कि अब बाप को कभी उसके दर्शन ही न होते थे।

धीरे-धीरे कचरू बूढ़ा हो गया। अब उसमें पहले की सी ताकत और फुर्ती न

रही। एक दिन उसने बहुत चिन्तित होकर सोचा—'मेरे मरते ही दूकान बन्द हो जाएगी। मैंने जो ज़िन्दगी भर कमाया, उसे मेरा लड़का तीन दिन में फूँक देगा। उसके बाद क्या करेगा वह! भीख माँग कर पेट भरेगा!'

आखिर उसने पत्नी को बुला कर कहा—'अरी! तूने लड़के को निकम्मा बना कर छोड़ दिया! धोबी का कुत्ता न घर का, न घाट का! अब भी उसे समझा दो जिससे वह बाप-दादों का धन्धा सीख ले।'

'अरे! तो जल्दी क्या आ पड़ी है! वह भी तो बिलकुल बेकार नहीं बैठा है! नौकरी ढूँढ रहा है। कभी न कभी लग ही जाएगी!' उसकी पत्नी ने लड़के का पक्ष लेते हुए कहा।

पत्नी की बातें सुन कर कल्लू को बहुत गुस्सा आया। वह चिल्लाया—'नौकरी! कौन देगा उस अभागे को नौकरी! क्या तू जानती है कि पसीने की कमाई कैसी होती है! शायद तेरा बेटा सोचता है कि मेरी कमाई से गुलछर्रे उड़ाए और बाबू बन कर घूमता फिरे। कह देना कि मुँह धो रखे। मैं अपनी कमाई से उसे कानी कौड़ी भी नहीं दूँगा। मैंने आज तक किसी दिन तीन रुपए से कम नहीं कमाए। देखें, तेरा लाल तीन रुपए न सही; तीन चवन्नी भी तो कमा लाए!' क्रोध के मारे उसका सारा बदन काँप रहा था।

इतने में कानू घर आया। 'देखो बेटा! तुम्हारे बाबूजी ने तुम्हें बिलकुल निकम्मा समझ लिया है। कहते हैं कि तू रोज़ बारह आने पैसे भी नहीं कमा सकता!' उसकी माता उससे बोली। 'तो ऐसा कहो न! अभी कमा लाता हूँ।' यह कह कर कानू उलटे पाँव लौट गया। कानू ने गुस्से में डींग तो मारी। लेकिन उसे क्या मालूम था कि पैसा कैसे कमाया जाता है। रुपया पेड़ पर तो लगता नहीं कि आसानी से तोड़ कर घर ले जाए।
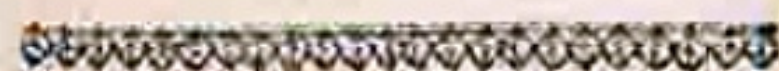
वह बड़ी देर तक इधर-उधर घूमता फिरा। आखिर घर लौट आया और मैया से बोला—'माँ! बड़ी दौड़-धूप की है आज! दर्द के मारे सर फटा जा रहा है!'

'तो बेटा! कुछ कमा लाए कि नहीं!' उसकी माँ ने पूछा।

'नहीं; मगर खा-पीकर फिर निकल जाऊँगा।' उसने कहा।

खा-पीकर कामू बिस्तरे पर पड़ गया तो शाम तक सोता ही रहा। जागने के बाद सोच में पड़ गया। पिता आते ही पूछेंगे कि 'ला! तेरी कमाई कहाँ है!' तब वह क्या जवाब देगा! अन्त में उसे एक तदबीर सूझ गई। उसने माँ से कहा—'माँ! आज के बारह आने तू दे दे! कल ज़रूर कमा लाऊँगा।'

उसकी माँ ने उसे कुछ नहीं कहा। संदूक खोल कर पैसे निकाल लिए और झट उसे दे दिए।

कचरू दिन भर काम करने के बाद दूकान से लौट कर घर आया। कामू ने उसे देखते ही तपाक से पैसे निकाल कर उसके हाथ में रख दिए। कचरू ने थोड़ी देर तक देखा और पूछा—'बेटा! कहाँ मिले ये पैसे तुझे?'

'मिलेंगे कहाँ से! दिन भर काम करके कमा लाया हूँ।' कामू बोला।

'अच्छा! ऐसी बात!' यह कह कर कचरू ने वे पैसे चूल्हे में फेंक दिए।

दूसरे दिन माँ बेटे से बोली—'आज तो जाकर कुछ कमा लाओ बेटा!' उस दिन कामू ने माँ की नज़र छिपा कर संदूक से एक रुपया निकाल लिया। चार आने की मिठाई खरीद कर खा ली और शाम को हाँफते-हाँफते घर लौट आया। आते ही बारह आने पिता को दे दिए और बोला—'मेरे पसीने की कमाई है!' पिता ने उस दिन भी उन पैसों को उलट-पुलट कर देखा। आखिर उठा कर चूल्हे में फेंक दिए और बोला—'यह तेरे पसीने की कमाई नहीं है। मुझे धोखा देने की कोशिश कभी न करना!'

तीसरे दिन कामू सोच में पड़ गया। पिता को धोखा देना आसान नहीं था। इसलिए उसने सोचा कि 'आज जाकर सचमुच कमा लाऊँगा।' यह सोच कर तुरन्त वह घर से निकल गया। उस दिन उस गाँव में हाट लगता था। वह सीधे हाट में गया और गठरियाँ ढोने लगा। लेकिन शाम तक इस तरह मेहनत करने पर भी एक ही चवन्नी कमा पाया। दूसरे दिन वह घाट पर जाकर माल-असबाब ढोकर गाँव में लाने लगा। इस तरह कुछ पैसे जमा कर लिए। कामू हट्टा-कट्टा तो था; मगर कभी मेहनत करने का आदी न था। इसलिए पहले बड़ी मुश्किल जान पड़ी। फिर भी ध्यान के साथ काम करता रहा। दिन भर ढोने पर कहीं छः आने पैसे मिले। तीसरे दिन भी इसी तरह मेहनत करके उसने किसी तरह बारह आने जमा कर लिए। बारह आने पूरे होते ही लाकर पिता के हाथ में रख दिए। कचरू ने उस दिन भी पैसे चूल्हे में फेंक दिए। लेकिन कामू ने दौड़ कर पैसे चूल्हे में से निकाल लिए। और दिनों की तरह देखता खड़ा नहीं रहा।

तब कचरू उसकी ओर देख कर मुस-कुराते हुए बोला—'बेटा! सचमुच यह तुम्हारे पसीने की कमाई है। इसके पहले भी मैंने दो बार पैसे चूल्हे में फेंक दिए। लेकिन तुमने चूँ तक नहीं की। जानते हो, क्यों? इसलिए कि वह तुम्हारे पसीने की कमाई नहीं थी।'

पसीने की कमाई से आदमी को ममता होती है। जो कमाता है उसी को मेहनत की कीमत मालूम होती है। दूसरों की कमाई खाने वाला इसे समझ नहीं सकता। इसलिए हरेक को कमा कर खाने की कोशिश करनी चाहिए। अब कामू की आँख खुल गई। उस दिन से वह खूब मेहनत करके पैसे कमाने लगा।

रामू एक अनाथ बालक था। उसके माँ-बाप कौन थे, वे कहाँ पैदा हुए और कहाँ मर गए, यह किसी को ज्ञात नहीं था। रामू ने जब होश सम्हाला तो अपने को धीरपुर में दूसरों के टुकड़ों पर पलते पाया।

रूखा-सूखा जो कुछ माँगने से मिल जाता वही रामू का पेट भरने के लिए काफी था। वह सो लिया करता था किसी के घर के बाहरी चबूतरे पर। अगर किसी माई को उसका नङ्ग-धडङ्ग बदन देख कर कृपा आ जाती और कुछ फटे-पुराने चीथड़े दे देती तो वही उसकी पोशाक बन जाते।

इतना सब कुछ होने पर भी रामू को अपनी ज़िन्दगी से कोई शिकायत न थी। वह हमेशा मस्त विचरा करता था। बड़ा मौजी जीव था। मुखड़े पर कभी उदासी की छाया भी न फटकने पाती थी। दूसरों को देख कर वह कभी न जलता था। जहाँ तक उससे बन पड़ता, सब की मदद किया करता। दूसरों के काम में हाथ बँटाने के लिए हमेशा तैयार रहता। इसलिए सब लोग उसे चाहते थे।

दीवाली का दिन था। उस दिन सबके घर खुशी छाई हुई थी। रात को जो चहल-पहल और रौनक होने वाली थी, उसके लिए अभी से तैयारियाँ हो रही थीं। घरों को सजा कर छिड़काव किया जा रहा था। बंदनवार बाँधे जा रहे थे। बन्धु-मित्रों को न्यौते भेजे जा रहे थे।

दिन चढ़ आया था। मगर रामू कुन्दन साव के घर के बाहरी चबूतरे पर पड़ा-पड़ा अभी तक सो रहा था। पिछली रात उनके घर के काम-काज में मदद करते हुए वह बड़ी देर तक जगा रहा। 'अबे! रामू! ओ रामू! अरे, परब-दिन है और तू अभी तक पड़ा सो रहा है!' कुन्दन साव बाहर आए और रामू को सोता देख कर चिल्लाए।

उषाकुमारी

रामू आँख मलते हुए उठ बैठा। उसे याद आया कि आज ही दीवाली है। उठ कर कुँए के पास गया। ठण्डा पानी मुँह पर छिड़क लिया और हाथ-पाँव धो लिए। नींद की खुमारी छूट गई। वह सड़क पर आया और कदम बढ़ा कर चलते-चलते रुक गया। उसने सोचा—'कहाँ जाऊँ!' सब लोग अपने-अपने घर में मग्न थे। वे जानते थे कि रात आएगी और वे पटाखे छोड़ेंगे और आतिशबाजियाँ जलाएँगे। लेकिन रामू का तो कोई घर न था। अचानक उसने सोचा—'चलूँ राय साहब के घर। आज उनके यहां बड़ी चहल-पहल होगी।' यह कदम बढ़ा कर उसी ओर चल दिया।

राय साहब दुलीचन्द बड़े धनी-मानी आदमी थे। रामू कभी-कभी उनके घर जाकर उनके नातियों और पोतों को गोदी में उठा कर बहलाया करता था। इसके बदले वे उसे कुछ न कुछ खाने-पीने को देते और कभी-कभी दो-चार आने पैसे भी दे दिया करते।

रामू राय साहब के बङ्गले के नज़दीक पहुँच गया। इतने में उसकी नज़र जानू बुढ़िया की झोंपड़ी पर पड़ गई। उसने देखा कि झोंपड़ी की देहली गन्दी पड़ी है, जैसे तीन-चार दिन से किसी ने झाड़ू नहीं दिया है। इसके अलावा टट्टी भी भिड़काई हुई है। यह देख कर रामू अपने-आप रुक गया। बात कुछ अजीब सी थी। क्योंकि जानू बुढ़िया गरीबिन होने पर भी अपनी झोंपड़ी को बहुत साफ-सुथरा रखती थी। उसके दरवाजे की टट्टी भी कभी नहीं लगी रहती थी। क्योंकि वह हमेशा देहली पर बैठी आने-जाने वालों को टोक कर बातें किया करती थी। रामू ने सोचा—'देखें, अन्दर चल कर कि क्या बात है!' यह टट्टी ढकेल कर अन्दर गया।

तुरन्त अन्धेरी झोंपड़ी में रोशनी घुस आई। रामू ने देखा कि एक चटाई पर बुढ़िया पड़ी हुई है। उसे ज़ोर का बुखार चढ़ा हुआ है। सारा बदन तवे की तरह जल रहा है। वह बड़बड़ा रही है—'हा बिटुआ! हा राजा बिटुआ!'

देखते ही रामू ने समझ लिया कि बुढ़िया कमज़ोरी के मारे चल-फिर नहीं सकती। वह तीन-चार दिन से यों ही पड़ी हुई है। रामू ने उसे 'बुढ़िया दादी! बुढ़िया दादी!' कह कर पुकारा। लेकिन बुढ़िया ने उसे नहीं पहचाना। वह बड़-बड़ाई—'कौन हो बेटा, तुम! ज़रा पानी तो पिला दो! बड़ी प्यास लगी है!' रामू तुरन्त घड़ा लेकर गया और ताज़ा पानी भर लाया। उसने एक गिलास से बुढ़िया को पानी पिला दिया।

वह बैठ कर सोचने लगा कि क्या करूँ। अन्त में तै किया—'चलूँ, भोलेराम वैद्य के घर जाकर दवा ले आऊँ!'

वैद्य जी का घर ज्यादा दूर न था। रामू उनके यहाँ जाकर पैरों पड़ गया और गिड़-गिड़ाने लगा—'चलिए! एक बार बुढ़िया को देख लीजिए! वह मर रही है!' वैद्य झल्लाए और बोले—'मरती है तो मरने दे! त्यौहार के दिन यह कहाँ की बला ले आया है!' लेकिन अन्त में रामू की विनती सुन कर नरम पड़ गए और दवाइयों की पेटी लेकर उसके साथ चले। झोंपड़ी में पहुँच कर उन्होंने बुढ़िया की जाँच की और कहा—'रामू! घबराओ नहीं! मामूली बुखार है। साँझ तक उतर जाएगा। हाँ, कमज़ोरी ज्यादा है। इसे सागूदाना बना कर खिला देना।' यह कह कर, दवाई देकर वे चले गए। रामू ने बुढ़िया को दवाई पिला दी और सोचने लगा कि सागूदाना कहाँ से लाऊँ! उसके पास कानी कौड़ी भी न थी। बुढ़िया की झोंपड़ी में भी दरिद्रता का राज

था। आखिर वह उठ कर कुन्दन साव के घर गया। साव जी पहले तो सागूदाने का नाम सुन कर बहुत बिगड़े। उधार और तिस पर दीवाली के दिन! कहने लगे—'भाग जा तुरन्त! नहीं तो टांग तोड़ दूंगा।' लेकिन रामू को भगा देना इतना आसान नहीं था। वह चुपके से सहुआइन जी के पास गया। वे उसे बहुत चाहती थीं। उसने उनके घर के काम-काज में कई बार मदद की थी।

सहुआइन जी ने अपने हाथों उसे सागूदाना और शक्कर दे दिया। रामू ने लौट कर दोनों पोटलियां झोंपड़ी में एक जगह रख दीं। नज़दीक जाकर देखा तो बुढ़िया का बुखार उतर चला था और वह झपक रही थी। रामू ने सोचा—'सागूदाना अभी नहीं दूंगा। शाम को दूंगा। तब तक बुखार उतर जाएगा।'

दोपहर हो चली थी। करने को और कुछ बाकी न था। हां, रामू को बहुत भूख लग रही थी। लेकिन वह बुढ़िया को छोड़ कर तो नहीं जा सकता था। इसलिए एक फटी-चिटी चटाई बिछा कर वहीं लेट रहा। वह बुढ़िया के बारे में सोचने लगा। बेचारी नानू बुढ़िया के कोई नहीं था! एक लड़का था जो उसी की उमर में घर छोड़ कर चला गया। वह कहां गया, किसी को पता नहीं। बेचारी बुढ़िया उसके नाम को बहुत रोई-धोई। लेकिन क्या फायदा! वह आज तक लौट कर नहीं आया। लोग कहते—'अरी बुढ़िया! ज़रा सब्र कर! तेरा बेटा खूब रुपया कमा कर लौटेगा!' लेकिन बुढ़िया तो हार मान बैठी थी। फिर भी हमेशा उसे याद किया करती थी! अड़ोसियों-पड़ोसियों की कृपा से वह अब तक किसी तरह दिन गुज़ार रही थी। लेकिन बीमारी में उसकी सेवा-टहल कौन करता!

फिर आज त्योहार था। किसको पड़ी थी कि जानू बुढ़िया जिन्दा है या मर गई!

यों सोचते-सोचते रामू की आँख झपक गई। वह एक सपना देखने लगा। सपने में उसने देखा कि अन्धेरा हो गया है और वह एक सड़क पर चला जा रहा है। चलते-चलते उसे एक बूढ़ा दिखाई दिया। उसने पूछा—'बेटा! कहाँ जा रहे हो?' 'जा रहा हूँ दीवाली देखने।' रामू ने उत्तर दिया। 'दीवाली देखना चाहते हो! अच्छा, मेरे साथ चलो।' बूढ़े ने कहा। रामू बूढ़े के साथ हो लिया।

बूढ़ा रामू को अपने साथ एक घर में ले गया। अन्दर जाते वक्त उसने कहा—'यह एक बड़े पण्डित जी का घर है। अब ज़रा इनकी दीवाली देखना।' दोनों अन्दर गए और जाकर बैठकखाने के एक कोने में खड़े हो गए। पण्डित जी के बहुत से यार-दोस्त वहाँ बैठे हुए थे। गपशप चल रहा था। पण्डित जी के बाल-बच्चे रेशमी कपड़े पहने आनन्द से घूम रहे थे। बड़ी रौनक थी। बूढ़े ने कहा—'देखो! ये लोग कितने सुखी दिखाई देते हैं!' 'हाँ, सचमुच इन्हें किसी चीज़ की कमी नहीं।' रामू बोला। 'लेकिन यह बात सच नहीं। पण्डित जी बहुत पढ़े-लिखे हैं। लेकिन बहुत ईर्ष्यालु और क्रोधी जीव हैं। अपनी बीबी, बाल-बच्चों और नौकर-चाकरों पर हमेशा बिगड़ते रहते हैं। जानते हो, डाह करने वाले और बात बात पर गुस्सा होने वाले कभी सुखी नहीं हो सकते।
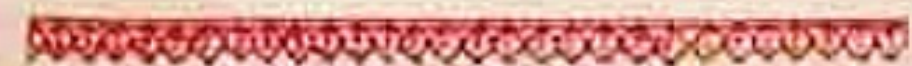
इनके एक प्रतिद्वन्दी ने एक किताब लिखी है जिसकी सब लोगों ने बड़ी प्रशंसा की और उन्हें पुरस्कार भी मिला है। यह खबर पण्डित जी को आज ही मालूम हुई है। वे जल रहे हैं। देखो न उनका चेहरा! क्या नाम को भी खुशी है उस पर!' बूढ़ा बोला। रामू ने देखा तो इस आनन्द के समय भी पण्डित जी का चेहरा मुरझाया हुआ था। दोनों चुपके वहां से चले।

सड़क पर आने के बाद बूढ़े ने कहा—'चलो, अब मैं तुम्हें धनवानों की दीवाली दिखाऊं।' यह कह कर बूढ़ा रामू को एक बड़े महल में ले गया। उस महल के सामने बहुत से लोग पटाखे छोड़ रहे थे और आतिशबाज़ियां जला रहे थे। महल के अन्दर झाड़-फानूस लटक रहे थे और बिजली की बत्तियों से दिन की सी रोशनी हो रही थी। एक बहुत बड़े कमरे में, जिसमें गाना-बजाना हो रहा था, बहुत से लोग बैठे हुए थे। रामू वहां की शान-शौकत देख कर दंग रह गया। वहां जितने लोग थे,

सब कीमती कपड़े पहने हुए थे। उनको देख कर रामू ने सोचा—'ये लोग सुखी हैं।' बूढ़े ने मानों उसके मन की बात ताड़ ली और कहा—'बेटा! तुम्हारा सोचना गलत है। देखो! सबके बीच जो गद्दे पर बैठा हुआ है, वही मकान-मालिक है। उसका चेहरा देखो! वह चिन्ता से घुला जा रहा है। उसका इकलौता लड़का सब तरह की बुरी आदतों का शिकार है। वह जुआरी, शराबी और लम्पट है। बाप का बेईमानी से कमाया हुआ रुपया वह पानी की तरह बहाता है। इधर मालकिन हमेशा पतोहू के साथ झगड़ती रहती है। इस घर में सब कुछ है; मगर सुख-शान्ति नहीं है। चलो, अब यहाँ से चलें।' दोनों उठ कर बाहर आए।

बूढ़े ने कहा—'बेटा रामू! अब चलो, मैं तुम्हें सच्ची दीवाली दिखाऊँ!' रामू उस के साथ चलते हुए मन-ही-मन सोचने और अचरज करने लगा कि बूढ़ा न जाने, अब उसे कहाँ ले जाएगा! थोड़ी देर बाद वे दोनों एक झोंपड़ी के पास पहुँचे। रामू ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि दो देवियाँ जो दिव्य वस्त्राभूषण पहने हुई थीं, उस झोंपड़ी में घुस रही हैं। उसने बूढ़े से पूछा—'ये दोनों देवियाँ कौन हैं और ये क्यों उस झोंपड़ी में घुस रही हैं?' बूढ़ा बोला—'बेटा! ये ही देवी सरस्वती और देवी लक्ष्मी हैं, जो पण्डित और धनवान का घर छोड़ कर उस झोंपड़ी में प्रवेश कर रही हैं। तुम भी जाओ न अन्दर! देखो, क्या होता है!' इतना कह कर बूढ़ा अदृश्य हो गया।

रामू ने डरते-डरते जाकर झोंपड़ी के दरवाज़े की टट्टी ढकेली और अन्दर कदम रखा। वहाँ एक ही मिट्टी का दीप जल रहा था, जिसकी रोशनी अन्धेरे को भगाने में पूरी तरह कामयाब नहीं हो रही थी। उस धुँधली रोशनी में रामू ने देखा कि एक

बुढ़िया चटाई पर बैठी हुई है, जिसका चेहरा ठीक जानू बुढ़िया जैसा है। उस बुढ़िया ने रामू को देखते ही हाथ पसार कर कहा—'बेटा! तुम आ गए!' और उठ कर उसे गले से लगा लिया। तुरन्त बुढ़िया की वह झोंपड़ी एक भव्य भवन में बदल गई। अब वहाँ हजारों दीप जलने लगे। वे मामूली दीप नहीं थे, बल्कि दिव्य मणि-दीप थे। रामू चिल्लाया—'यह क्या!' तुरन्त रामू का सपना टूट गया। उसकी आँखें खुल गईं। उसने देखा कि जानू बुढ़िया उठ कर बैठ गई है और एक नौजवान को गले लगा कर, बारम्बार माथा सूंघ रही है। रामू ने कहा—'जानू दादी! तुम्हें बुखार है। यह क्या कर रही हो! यह नौजवान कौन है?'

जानू बुढ़िया ने कहा—'बेटा रामू! यह मेरा लड़का है, जो तुम्हारी ही उमर में घर से भाग गया था। आज दीवाली के दिन यह फिर मुझे मिल गया।' उस नौजवान ने कहा—'माँ! अब मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगा। मैं खूब रुपया कमा लाया हूँ! अब तुम्हें किसी चीज़ की फिक्र न करने दूँगा। अच्छा, माँ! यह लड़का कौन है?'

'बेटा! यह रामू है। तुम्हारा भाई है।' जानू बुढ़िया बोली।

'आओ! भाई मेरे! गले मिल लो!' यह कह कर, उस नौजवान ने उठ कर रामू को गले लगा लिया।

अन्धेरा हो रहा था। रामू ने उठ कर दिया जलाया। थोड़ी दूर पर राय साहब दुलीचन्द के महल के सामने दिन का सा उजाला हो रहा था। बार बार प्रकाश का एक ज्वार सा उठता था, जिसकी तरंगें आसमान छू रही थीं। चहल-पहल का तो ठिकाना ही न था।

रामू और उसके नए भैया उस ओर देखने लगे। राय साहब दुलीचन्द का महल आनन्द से फूला न समा रहा था। मगर उनकी झोंपड़ी ही आज सच्ची दीवाली मना रही थी।

विश्वासघात

कहते हैं कि किसी समय यज्ञदत्त नाम का एक गरीब ब्राह्मण रहता था। एक बार उसे किसी काम पर दूसरे गाँव जाना पड़ा। रास्ते में एक जङ्गल पड़ता था। बीच जङ्गल में पहुँचते ही यज्ञदत्त को जोर की प्यास लगी। जब दूर पर एक कुँआ दिखाई दिया तो लपक कर वह उसके पास पहुँचा। झाँक कर देखा तो कुँआ एकदम सूखा था। लेकिन देखता क्या है कि उसमें एक बाघ, एक बन्दर, एक साँप और एक आदमी गिरे हुए हैं।

बाघ ने यज्ञदत्त को देख कर कहा—'ब्राह्मण! कृपा करके मुझे बाहर निकाल दो! तुम्हारा भला होगा।'

'तुम्हारा तो नाम सुनते ही सब लोग थर-थर काँपने लगते हैं! मैं तुम पर कैसे विश्वास करूँ?' ब्राह्मण ने जवाब दिया।

इस पर बाघ ने फिर कहा—'भूदेवता! सब पापों से बढ़ कर कृतघ्नता है जिसका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। मैं कृतघ्नता दिखाऊँगा तो इहलोक-परलोक दोनों से जाऊँगा न? शङ्का मत करो। मैं कभी वैसा न करूँगा। कृपा करके तुम मुझे उबार लो!'

यज्ञदत्त को तरस आ गया और उसने उस बाघ को बाहर निकाल दिया।

उसके बाद बन्दर ने भी वैसी ही प्रार्थना की। उसने उसे भी निकाला। यह देख कर साँप ने भी विनती की। तब यज्ञदत्त बोला—'तुम्हें तो देखते ही मेरे हाथ काँपने लगे हैं! बोलो तो, कैसे तुम्हें बाहर निकालूँ?'

इस पर साँप बोला—'हे यज्ञदत्त! हमारा डसना या न डसना हमारी अपनी इच्छा पर निर्भर नहीं। भगवान के इशारे के बगैर हम किसी की कोई बुराई नहीं कर सकते। इसलिए डरो नहीं! मेरी भी

विधुभूषण

रक्षा करो और पुण्य कमाओ!' यह सुन कर यज्ञदत्त ने उस साँप को भी बाहर निकाल दिया।

तब बाघ ने यज्ञदत्त से कहा—'वह देखो! ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाला वह जो पहाड़ दिखाई दे रहा है, उसकी उत्तरी गुफा में मेरी माँद है। अगर तुम वहाँ तक आ जाओगे तो मैं तुम्हारी कुछ भलाई ज़रूर कर दूँगा।'

'उसी गुफा के सामने एक बरगद के पेड़ पर मैं रहता हूँ। उधर आने पर मेरे घर ज़रूर आना।' बन्दर ने भी ब्राह्मण को बुलावा दिया।

'तुम पर कभी कोई सङ्कट आ पड़े तो मुझे याद कर लेना! मैं तुम्हें बचाऊँगा।' साँप ने कहा। फिर बाघ, बन्दर और साँप तीनों अपनी-अपनी जगह चले गए।

उसके बाद ब्राह्मण ने दया-वश कुँए में गिरे हुए मनुष्य को बाहर निकाला। वह आदमी बोला—'ब्राह्मण महाराज! मैं वारिकच्छ नामक नगर का रहने वाला एक सुनार हूँ! कभी गहने बनाने का काम आए तो मेरे पास आ जाना!' यह कह कर वह भी अपने घर चला गया।

तब ब्राह्मण ने सोचा—'देखें, ये जीव-जन्तु जिनकी मैंने भलाई की, किस प्रकार मेरा स्वागत करते हैं!' यह सोच कर पहले वह बन्दर के पास गया। बन्दर ने मीठे-मीठे फल खिला कर उसे तृप्त कर दिया।

ब्राह्मण वहाँ से सीधे बाघ की गुफा में घुसा। बाघ ने उसे कुछ अमूल्य आभरण दिए और कहा—'हे विप्रवर! एक राज-कुमार जङ्गल में शिकार खेलने आया और घोड़े से गिर कर मर गया। उसके गहने मैंने उठा लिए और तुम्हारे लिए रख छोड़े हैं। यह लो!'

'ठीक तो है! मैं इन गहनों को अपने मित्र सुनार को देकर बिकवाऊँगा।' ब्राह्मण ने सोचा और वहाँ से सीधे वारिकच्छ नगर में सुनार के घर गया। सुनार ने ब्राह्मण
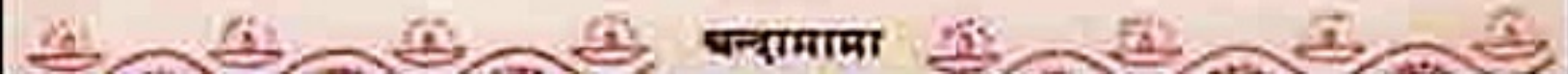
की बहुत खातिर की और पूछा—'मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ!'

तब ब्राह्मण ने उसे बाघ के दिए हुए गहने दिखाए और अपना इरादा प्रगट किया।

उन गहनों को देखते ही सुनार ने सोचा—'ये ज़रूर हमारे राजकुमार के गहने हैं, जिन्हें इसी बीच किसी ने जङ्गल में मार डाला। राजा ने घोषणा भी की है कि जो हत्यारे को पकड़वा देगा, उसे अच्छा ईनाम मिलेगा। इसी ब्राह्मण ने उसको मार डाला होगा। इसे पकड़वा कर मैं ही वह ईनाम क्यों न पाऊँ!'

बस, उसकी नीयत बिगड़ गई और उसने ब्राह्मण से कहा—'अच्छा, तुम ज़रा यहीं ठहरो! मैं बाज़ार जाकर इन्हें बेच लाता हूँ।' यह कह कर वह गहने लेकर सीधे राजा के पास गया और बोला—'महाराज! लीजिए अपने गहने! मैंने राजकुमार के खूनी को पकड़ लिया है।' राजा ने तुरन्त सिपाहियों को भेज कर ब्राह्मण को पकड़ मँगाया और उसे प्राण-दण्ड सुना दिया। रात को काल-कोठरी में ब्राह्मण ने साँप को याद किया। तुरन्त साँप ने वहाँ आकर कहा—'मुझे सब कुछ मालूम हो गया। मैं जाता हूँ रानी को डसने।
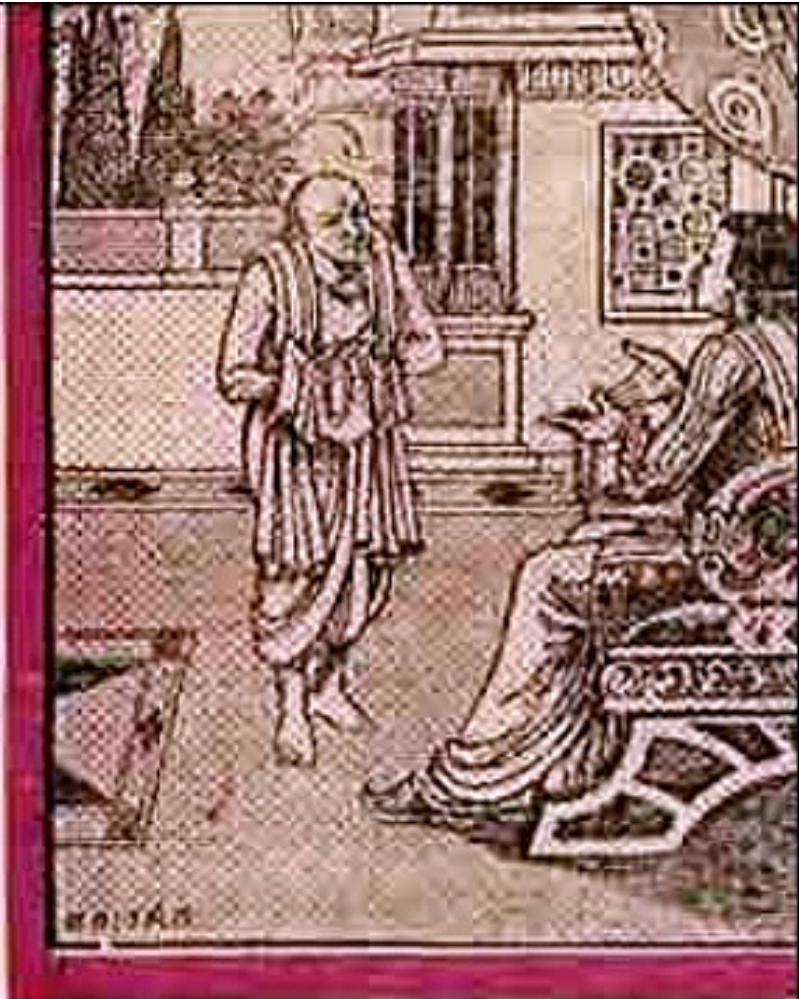
उसे कोई नहीं जिला सकेगा। लेकिन तुम्हारा हाथ छूते ही वह जी उठेगी। बस, राजा तुम्हें माफ़ कर देगा।' यह कह कर साँप चला गया और जाकर रानी को डस लिया।

थोड़ी देर में राजा के अन्तःपुर में कुहराम मच गया। बड़े-बड़े वैद्य-हकीम, सँपेरे-मान्त्रिक वगैरह आए। लेकिन कोई रानी को न जिला सका। तब राजा ने घोषणा की कि जो रानी को जिलाएगा, उसे मुँह-माँगा ईनाम मिलेगा। तब यज्ञदत्त ने जाकर उसे जिलाया और ईनाम पाया। इतना ही नहीं; जब उसने गहनों के बारे में सच्ची-सच्ची बात सुना दी तो राजा ने सुनार को प्राण-दण्ड दे दिया।

किसी समय एक नगर में तीन दोस्त रहते थे। उनमें एक धनी था, दूसरा विद्वान था और तीसरा चतुर था। उन तीनों में एक बार तकरार हुआ कि किसकी बड़ाई ज़्यादा है! हर एक कहने लगा—'मैं बड़ा हूँ, सो मैं बड़ा हूँ।' अन्त में तीनों में से एक ने कहा—'भाइयो! नाहक झगड़ने से कोई फायदा न होगा। सुनो, इस नगर की राजकुमारी ने शपथ ली है कि वह मरद का मुँह तक नहीं देखेगी। इसीलिए वह अपना एक खास महल बनवा कर उसमें रहती है। उस महल की तरफ कोई मरद आँख उठा कर भी नहीं देख सकता। जो दुस्साहस करता है, उसकी जान खतरे में पड़ जाती है। अब सुनो, हम तीनों में से जो उससे ब्याह कर पाए, वही बड़ा है।' उससे शर्त बाकी दोनों ने भी मान ली। तुरन्त धनी मित्र ने सदावर्त बाँटना और दान-पुण्य करना शुरू किया जिससे उसकी बड़ाई राजकुमारी तक पहुँचे।

उसने बहुमूल्य हीरे-जवाहर खरीदे और नवरत्न-खचित आभरण बनवा कर उन्हें सब को दिखाने लगा।

उसका विश्वास था कि उसकी प्रशंसा कभी न कभी राजकुमारी के कानों में पड़ेगी ही। तब उसके मन में अवश्य कुतूहल पैदा होगा। एक बार दासियों ने उसके धन-वैभव और उसकी दानशीलता का जिक्र चलाया भी। तब राजकुमारी ने पूछा—'यह व्यक्ति औरत है कि मरद?'

दासियों ने बताया कि मरद है।

'तो फिर कभी मरदों का जिक्र यहाँ न चलाना!' राजकुमारी ने घृणा के साथ कहा। जब धनी मित्र को किसी तरह यह बात मालूम हो गई तो बेचारे को हार माननी ही पड़ी।

सुमनलता देवी

उसके बाद विद्वान की बारी आई। वह राज-पथ पर जाकर दूसरों के शरीर में प्रवेश करना, अदृश्य हो जाना इत्यादि चमत्कार दिखाने लगा।

तुरन्त सब जगह उसकी चर्चा होने लगी। जब दासियों ने राजकुमारी से उसका जिक्र किया तो उसने पूछा—'वह कौन है, औरत है कि मर्द?'

दासियों ने बताया कि मर्द है। तब राजकुमारी ने आग-बबूला होकर कहा—'मैंने पहले ही तुम लोगों से कह दिया था कि मर्दों की चर्चा यहाँ न करना। फिर कभी ऐसा करोगी तो याद रखो, मैं तुम लोगों के सिर कटवा कर किले के कंगूरों पर टँगवा दूँगी।'

जब यह बात किसी तरह विद्वान को मालूम हुई तो वह भी निराश हो गया।

अन्त में चतुर-पुरुष की बारी आई। उसने धीरे-धीरे उस बुढ़िया से, जो राजकुमारी के लिए फूलों की मालाएँ गूँथ कर ले आया करती थी, हेल-मेल कर लिया और उसके घर जाकर रहने लगा।

एक दिन चतुर-पुरुष ने कहाँ से रङ्ग-बिरङ्गे फूल लाकर एक सुन्दर माला गूँथी। वह उसे बुढ़िया के हाथ में देकर बोला—'नानी! नानी! आज मैंने यह माला गूँथी है। तुम इसे ले जाकर राजकुमारी को दे देना। वह खुश होकर पूछेगी कि 'यह माला किसने गूँथी है?' तब तुम कहना—'कल मेरी भांजी दूसरे गाँव से आई। उसी ने यह माला गूँथी है।' तब राजकुमारी अगर कुछ कहे तो वह मुझसे आकर कह देना।'

बुढ़िया ने वैसा ही किया। राजकुमारी बहुत खुश हुई और बोली—'नानी! मैं तुम्हारी भांजी को देखना चाहती हूँ। कल उसे अपने साथ लेते आना।'

बूढ़ी ने घर आकर सारा हाल चतुर-पुरुष को सुना दिया। दूसरे दिन उसने

'अच्छा! मैंने सुना है कि तुमने मरद का मुँह तक न देखने की शपथ ली है। बताओ; तुम्हें मर्दों से क्यों इतनी चिढ़ है!'

तब राजकुमारी बोली—'प्यारी सखी! यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा रहस्य है। जाने क्यों, मेरा मन तुम्हारे प्रति बहुत आकर्षित हो रहा है। इसलिए तुम्हें सुना देती हूँ। याद रखो, यह भेद किसी से नहीं कहना होगा। सुनो, पिछले जन्म में मैं और मेरे पति दोनों हरिण-रूप में विचरते रहते थे। एक बार हम दोनों एक व्याध के जाल में फँस गए। मैं उस समय गाभिन थी। इसलिए उस जाल से बच कर भाग न सकी। मेरा पति बच कर भाग गया। उस ने मेरी सुध भी न ली। मैं लाचार थी। क्या करती! व्याध ने मुझे पकड़ कर मार डाला। तब से इन स्वार्थी मर्दों को देखते ही मेरा खून खौलने लगता है। मैंने उसी समय शपथ ले ली कि फिर कभी मर्दों का मुँह न देखूँगी। मुझे अपने पूर्व-जन्म की सारी बातें याद हैं। इसी से तुम्हें यह रहस्य बता सकी।'

एक युवती का भेष बना लिया और बुढ़िया के साथ राज-महल में गया।

बेचारी राजकुमारी क्या जाने कि वह औरत के रूप में एक मरद है! उसको बिलकुल शक न हुआ। राजकुमारी को उस नकली युवती से प्रेम हो गया। उसने उसे अपनी सखी बना लिया और अपने मन की सारी बातें सुनाने लगी।

थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद उस युवती ने पूछा—'राजकुमारी! मैं एक सवाल पूछना चाहती हूँ। क्या सच-सच बताओगी!'

'ज़रूर बताऊँगी।' राजकुमारी ने उससे कहा।

भेद जानने के बाद उस नकली युवती सोचा कि 'अब ज्यादा देर तक यहाँ रहने से मेरा भण्डा फूट जाएगा।' इसलिए

वह राजकुमारी से छुट्टी लेकर तुरन्त घर चली गई।

घर जाकर उस चतुर-पुरुष ने एक जोगी का भेष बनाया और उस राज-महल की बगल में एक बाग में जाकर धूनी रमाई। उस जोगी ने बाग के माली से कह दिया था— 'बेटा! मरद लोग जितने भी आयें; कोई परवाह नहीं। हाँ, औरतों को अन्दर न आने देना। खबरदार! अगर औरतें आईं तो मैं तुरन्त तुम्हें शाप दे दूँगा।' माली उसके आज्ञानुसार पहरा देने लगा और औरतों को अन्दर आने से रोकने लगा।

हर रोज़ शहर के बहुत से मरद उस जोगी के दर्शन करने आने लगे और आशीर्वाद पाकर लौटने लगे। धीरे-धीरे उस बात की भनक राजा तक पहुँच गई। एक दिन राजा स्वयं उसके दर्शन करने आया और बोला—'महात्मा! आप एक बार हमारे घर पधारें और हमें कृतार्थ करें।'

तब जोगी ने उनको अपनी शपथ की बात सुनाई और कहा—'जरूर आऊँगा! मगर याद रखना! मैं औरत का मुँह नहीं देखता।'

यह सुन कर राजा बोला—'भगवन्! मैं ऐसा इन्तज़ाम करूँगा जिससे आपको कोई
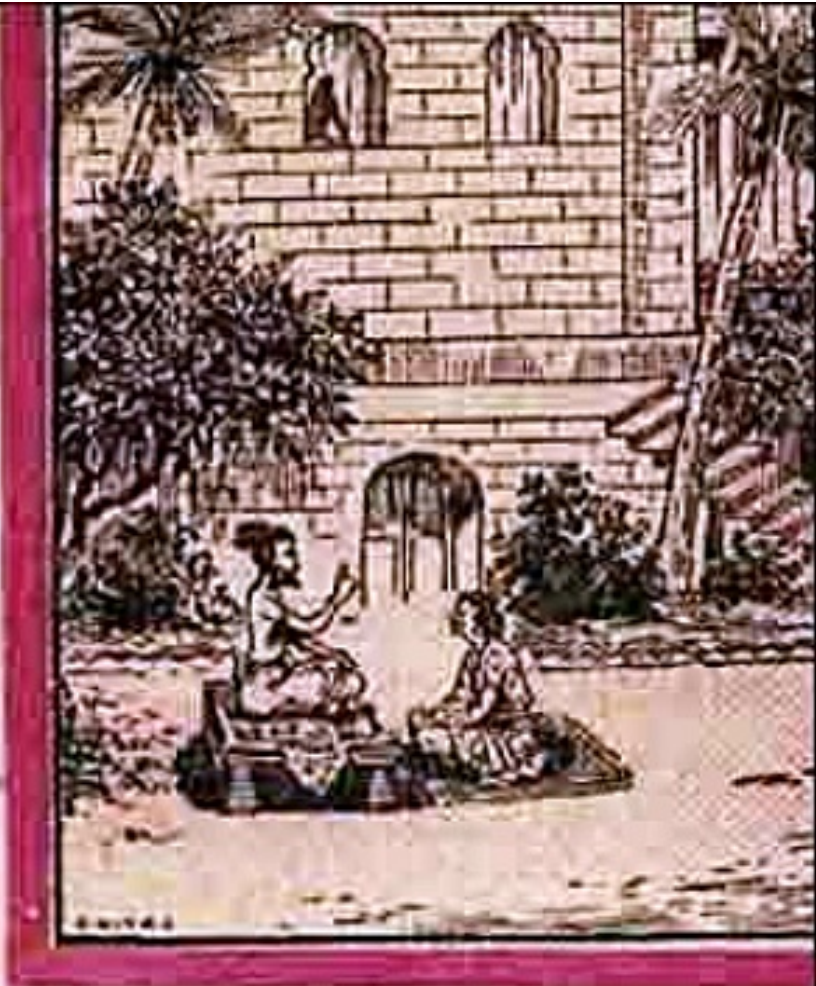
दिक्कत न हो।' यह कह कर उसने हुक्म दे दिया कि किले में किसी औरत को न आने दो। तब बड़ी धूम-धाम के साथ जोगी को अपने महल में ले गया।

इस जोगी की शपथ की बात राजकुमारी ने भी सुनी। उसने सोचा—'कैसी अजीब बात है! इस जोगी ने ठीक मुझसे उल्टी ही शपथ ली है!' उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने निश्चय कर लिया कि इस अजीब आदमी को देखना चाहिए। इसलिए उसने अपने महल की खिड़की पर एक परदा टँगवाया। वह उसकी आड़ से झाँक कर देखने और उस विचित्र जोगी की बातें ध्यान से सुनने लगी।

राजा ने उस जोगी का खूब सेवा-सत्कार किया और उनका उपदेश सुन कर बोला—'भगवन्! आपने मेरे सारे सन्देह दूर कर दिए। लेकिन एक सवाल मैंने अभी तक नहीं किया। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप औरत का मुँह क्यों नहीं देखते?'

तब उस कपटी साधू ने जवाब दिया—'राजन्! मैं तुम्हारा कुतूहल दूर करता हूँ। सुनो! पिछले जन्म में मैं और मेरी पत्नी, दोनों हरिण-रूप में फिरते थे। एक बार हम दोनों एक व्याध के जाल में फँस गए। तब मेरी पत्नी ने मुझे जाल में ही छोड़ दिया और खुद जान बचा कर निकल गई। तब से मैंने शपथ ले ली कि फिर कभी औरत का मुँह नहीं देखूँगा। पिछले जन्म की बात अभी तक मुझे याद है। इसी से आपको यह भेद बता सका।'

राजकुमारी जो छिप कर ये बातें सुन रही थी, जल्दी-जल्दी नीचे उतर आई और जोगी के सामने जा खड़ी हुई। वह बोली—'जी! आप झूठ बोल रहे हैं। सच बताइए, जाल में से हरिण भाग गया था या हरिणी? पिछले जन्म में मैं ही हरिणी बन कर पैदा हुई थी। व्याध के जाल में फँस कर मैंने ही जान गँवाई थी। आप सोचते हैं कि झूठ बोल कर सारा दोष मुझ पर लाद देंगे और यह कोई नहीं जानेगा। मेरे पति के सिवा यह कहानी किसी को मालूम नहीं। इससे मालूम होता है कि आप ही मेरे पति हैं!' यह कह कर उसने उस जोगी का हाथ पकड़ लिया।

फिर बड़ी धूम-धाम के साथ दोनों का व्याह हो गया। वे सुख से दिन काटने लगे। धनी और विद्वान, दोनों मित्रों को मानना पड़ा कि चतुर-मित्र ही उनसे बड़ा है।

18

थोड़ी देर में धुआँ हट गया। उदय ने जब फिर कदम आगे बढ़ाया तो तरह-तरह की आवाज़ों से सारी गुफा गूँजने लगी। लेकिन वह ज़रा भी नहीं डरा। सीधे माता के सामने जाकर खड़ा हो गया और बोला—'मैया! क्या तुम सचमुच इतने बेकसूरों की जान लेना चाहती हो! यह कैसा इन्साफ है! उस दुष्ट राक्षस को वर देकर क्या तुम सारे संसार को संकट में डालना चाहती हो!'

लेकिन काली मैया कुछ नहीं बोली।

तब उदय फिर कहने लगा—'मैया! हमने अनेक कष्ट उठाए हैं। लेकिन हमने अब तक किसी की बुराई नहीं की। पर सुनो मैया! अब इस दुष्ट राक्षस की जान लिए बिना हम नहीं रहेंगे! मैया, अब तो हम पर कृपा करो और बता दो कि उस पापी राक्षस के प्राण कहाँ बसते हैं!'

लेकिन देवी ने कोई जवाब न दिया।

बस, उदय ने म्यान से तलवार खींच ली और एक ही वार में देवी के हाथ पर बैठे हुए गीध को दो टुकड़े कर डाला। दोनों टुकड़े होम-कुण्ड में जा गिरे। यह क्या! देवी की मूर्ति देखते-देखते अन्तर्धान हो गई और सारी गुफा एक अद्वितीय प्रकाश से चमक उठी।

उदय ने पीछे मुड़ कर देखा। वह जिन-जिन कमरों में होकर आया था वे

सभी गायब थे। उस जगह एक मैदान था। उदय अब वापस चलने लगा। पहले जिस जगह हीरे-जवाहरात जड़ा दरवाज़ा था वहाँ आने पर हीरे जड़ा हुआ एक अण्डा दिखाई दिया, जो बत्तख के अण्डे के बराबर था। उसे उठा कर वह चला। थोड़ी दूर जाने पर उसे एक चाँदी का अण्डा दिखाई दिया और थोड़ी दूर जाने पर उसे एक सोने का अण्डा दिखाई दिया। उन्हें भी उठा कर वह चल पड़ा। आगे बढ़ने पर उसने देखा कि जिस कमरे में पहले दाढ़ी वाला टँगा हुआ था, वह और उसके आस-पास के सभी कमरे गायब हैं।

उदय हैरान होकर गुफा से बाहर निकला। तुरन्त राक्षस के नौकरों ने आकर उसे घेर लिया। उनके साथ जितने लोग सरोवर में हंस बने तैर रहे थे, वे सब के सब मनुष्य-रूप धारण कर उसके पास आ गए। भाई को देखते ही प्रदीप दौड़ा और आकर उसके गले लग गया।

इतने में राक्षस के नौकरों ने उदय को हाथों-हाथ उठा कर कन्धे पर चढ़ा लिया और उछालते हुए बोले—'भैया! सचमुच तुम कोई देवता हो! तुम्हारी कृपा से आज इतने दिन बाद हमें इस गुलामी से मुक्ति मिल गई। हम तुम्हारा यह ऋण कैसे चुका सकते हैं!' उन सब ने एक स्वर में कहा।

इतने में उन को उदय की थोड़ी बाँह दिखाई दी, जिस से खून बह रहा था। सब चिल्लाने लगे—'यह क्या! झट जाकर जड़ी-बूटियाँ ले आओ! दवा लगा दें!'

तुरन्त लोग दौड़ कर गए और जड़ी-बूटियाँ ले आए। उनका रस निचोड़ कर उदय की बाँह पर लगा दिया गया और पट्टी बाँध दी गई। फिर सब लोग सरोवर की तरफ चले। लेकिन अब वह सरोवर कहाँ!

कहाँ उसके किनारे के ये पेड़ ! वहाँ तो सिर्फ उन अभागों की पत्थर की मूर्तियाँ थीं, जो उदय ही की तरह राक्षस को मारने आए थे और विफल हो गए थे।

यह सब देख कर उदय को बहुत अचरज हुआ। उसने पूछा—'यह क्या ! सरोवर कहाँ है !'

तब राक्षस के नौकरों में से एक ने जवाब दिया—'सरोवर कहाँ से आएगा बाबूजी ! वह तो देवी के साथ ही गायब हो गया होगा।'

'फिर इन पत्थर की मूरतों का क्या हाल होगा !' उदय ने बड़ी चिन्ता के साथ पूछा।

'इनके लिए और कोई चारा नहीं ! सरोवर तो गायब हो ही गया ! अब इनको मनुष्य-रूप कैसे मिलेगा !' राक्षस के नौकरों ने कहा।

'हे भगवन् ! यह तो बहुत बुरा हुआ ! मेरे कारण इतने लोगों की जान आफत में पड़ गई !' यह कह कर उदय शोक में डूब गया।

कुछ देर मौन रहने के बाद उसने कहा—'मालूम नहीं, भाई निशीथ और
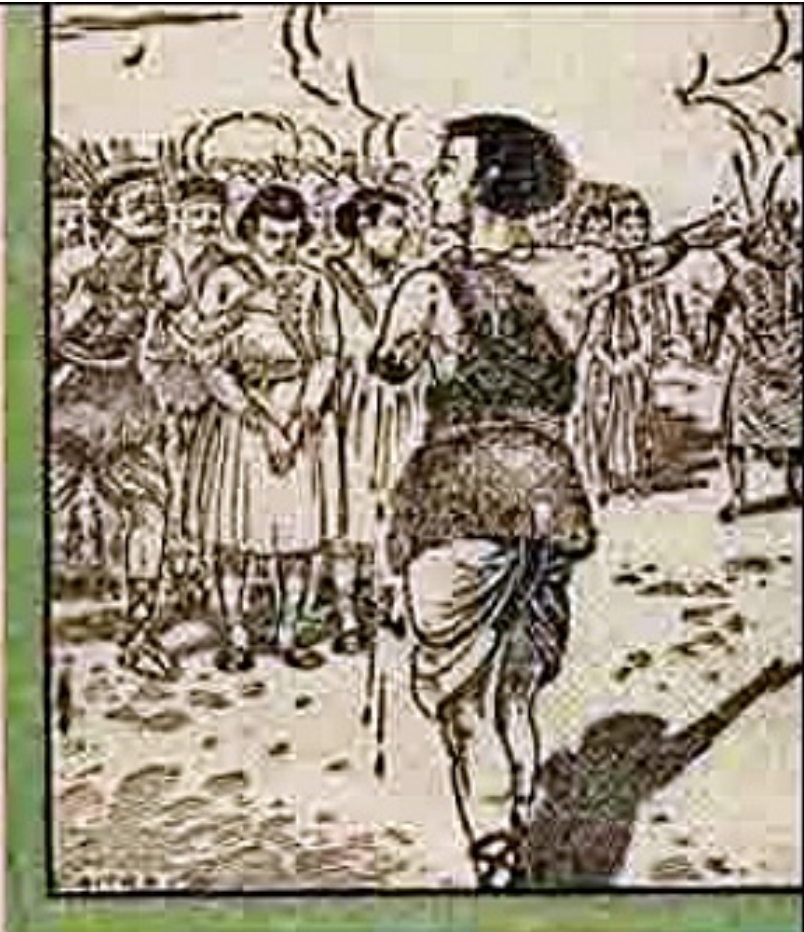
दाढ़ी वाला कहाँ हैं ! कौन जाने, राजकुमारियों का क्या हाल हुआ ! जल्दी से जल्दी इन सबको ढूंढ लाना होगा !'

'तो हम लोग ढूंढने जाते हैं।' राक्षस के नौकरों ने कहा।

'नहीं, तुम लोग यहीं पहरा देते रहो !' यह कह कर उदय ने नौकरों को वहीं छोड़ा और बाकी लोगों को साथ लेकर खुद वहाँ से चला। सबसे पहले उसने प्रतापसिंह के पास जाकर पूछ-ताछ की।

'नहीं भैया ! उनमें से तो कोई इस तरफ नहीं आया ! तुम भी तो बहुत दिनों बाद आज इधर आए हो ! बताओ, राक्षस

ने तुम्हें कैसे आने दिया!' प्रतापसिंह ने पूछा।

'पता नहीं, राक्षस कहाँ है, क्या कर रहा है! हाँ, उसका माया-महल मैंने मिट्टी में मिला दिया। अच्छा, सब कुछ बता दूँगा पीछे। अभी निशीथ और राजकुमारियों की खोज करने जाना है।' उदय ने जवाब दिया।

'चाहो तो कुछ सिपाहियों को साथ ले जाओ!' राजा ने बड़ी मेहरबानी दिखाते हुए कहा।

'ज़रूरत नहीं, धन्यवाद।' कह कर उदय ने राजा से छुट्टी ली और चल पड़ा।

* * *

अब हम ज़रा जान लें कि निशीथ का, जो प्रतापसिंह के सिपाहियों को साथ लेकर चला था, क्या हाल हुआ!

मौका पाकर प्रतापसिंह के सिपाहियों ने निशीथ का सिर काट लिया और उसे धड़ के साथ एक झाड़ी में फेंक कर चले गए। दूसरे दिन एक मुनिवर जो नज़दीक के किसी आश्रम में रहते थे, उधर से आए। उनकी नज़र उस लाश पर पड़ गई। तुरन्त वे उस सिर और धड़ को अपने आश्रम में ले गए और इन्तज़ार में रहे कि कोई न कोई इसकी खोज में आएगा।

कुछ दिन बाद दानशील महाराज के मन्त्री किसी काम पर इस आश्रम में आए। उन्होंने निशीथ के सिर को देख कर तुरन्त पहचान लिया। 'हाय! यह क्या हुआ!' कह कर वे आँसू बहाने लगे।

तब मुनिवर ने उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए कहा—'मन्त्री जी! आँसू बहाने से कोई फायदा नहीं। चलो, इस लाश को लेकर श्रावस्ती चलें! मैं भी तुम्हारे साथ आऊँगा। इसे जिलाना तो मेरे वश की बात नहीं; लेकिन हाँ, मैं तुम्हारी एक भलाई कर सकता हूँ। मैं इस लाश पर एक ऐसा

लेप लगा दूँगा जिससे यह हमेशा इसी तरह बनी रहेगी; कभी सड़ेगी नहीं।'

'इससे बढ़ कर भला और क्या चाहिए! चलिए! हम लोग पहले श्रावस्ती चलें। सारा हाल महाराज को सुना देंगे। वे ही निश्चय करेंगे कि अब क्या किया जाए!' मन्त्री ने कहा। आखिर वे दोनों उस लाश को लेकर श्रावस्ती गए।

निशीथ की लाश को देख कर सब लोग शोक में डूब गए। उदय, प्रदोष और उन की बूढ़ी माता तो ऐसे बिलखने लगे कि देखने वालों के कलेजे टूक-टूक हो जाते थे। राजा के महल में मातम छा गया। मुनिवर सब को धीरज बँधाने की कोशिश कर रहे थे। ऐसे समय दाढ़ी वाला वहाँ आ पहुँचा।

अब तुम पूछोगे कि दाढ़ी वाला ठीक समय पर वहाँ कैसे आ पहुँचा? सुनो, राक्षस जानता था कि दाढ़ी वाला बहुत मायावी है। माया-महल में छोड़ने से वह किसी न किसी तरह बन्धन छुड़ा लेगा और तब उसी की जान मुश्किल में पड़ जाएगी! इसलिए जब वह वहाँ से चला तो दाढ़ी वाले को भी साथ लेता गया।

राक्षस गीध के रूप में दाढ़ी वाले को चंगुल में दबोचे उड़ा जा रहा था। नीचे महासागर लहरें मार रहा था। चारों ओर पानी ही पानी था। ऐसे समय गुफा में उदय ने माई के हाथ पर बैठे गीध को मार डाला। गीध के मरते ही राक्षस का रूप बदल गया और वह असली रूप में 'हाय! हाय!' करते हुए समुन्दर में गिर पड़ा और ठण्डा हो गया। यह सब पल भर में हुआ।

उसके साथ दाढ़ी वाला भी समुन्दर में गिरा और तीन-चार दिन तक बड़ी मुश्किल से तैरता-तैरता किनारे पहुँचा।

राक्षस के मरते ही उसने समझ लिया था कि माया-महल गायब हो गया होगा! किनारे पर बैठ कर वह सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। इतने में उसे कुछ दूर पर एक शहर दिखाई दिया। वह उठ खड़ा हुआ। पास पहुँच कर पूछ-ताछ करने से मालूम हुआ कि यह श्रावस्ती नगर है। बस, अब उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। वह तुरन्त नगर में घुसा।

राज-महल में जाकर उसने देखा कि चारों तरफ कुहराम मचा हुआ है।

दाढ़ी वाला बुड्ढा तो था नहीं। वह मायावी राक्षस का चेला था। सारा हाल सुन कर उसने लोगों को ढाढ़स बँधाते हुए कहा—'घबराने की कोई बात नहीं। सब कुछ ठीक हो जाएगा!' फिर उसने उदय को बुला कर कहा—'भई! यह सब उस प्रतापसिंह की करतूत है; और कुछ नहीं। उसी ने अञ्जन-मल्ल वगैरह चुरा लिए होंगे। चलो, सीधे हम उसके यहाँ चलें। फिर देखा जाएगा!'

तुरन्त उदय ने महाराज की सेना एकत्र की और दाढ़ी वाले के साथ मालव-देश की ओर चला। वहाँ जाकर क्या देखता है कि सारा नगर सजाया गया है और जहाँ देखो, वहीं धूम मची हुई है। पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि राजा प्रतापसिंह की, तीन राजकुमारियों से एक साथ शादी होने वाली है। जगह जगह लोग इसी बात की चर्चा कर रहे हैं।

तब उदय को मालूम हुआ कि दाढ़ी वाले का कहना सच है। वे सब चकित होकर वहाँ से महल की ओर चले। अन्दर जाकर उन्होंने देखा कि लग्न-मण्डप में सुहासिनी, सुभाषिणी और सुकेशिनी तीनों, एक कतार में वधुएँ बनी बैठी हुई हैं और वरासन पर प्रतापसिंह बैठा हुआ है।

क्रोध से उदय ने तलवार खींच ली। लेकिन दाढ़ी वाले ने उसे रोक लिया। उसके कहने से सिपाहियों ने अन्दर घुस कर सबको बन्दी बना लिया। प्रतापसिंह भौंचक खड़ा देखता रह गया।

लाचार प्रतापसिंह ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। अञ्जन-मला वगैरह जो उसने चुरा लिए थे, वे भी वापस कर दिए। यही क्यों, वह उदय के पैरों पड़ गया और बोला—'भैया! मैं तुम्हारा गुलाम हूँ। मेरे पास जो कुछ है सब तुम्हारा है। मेरी जान बख्श दो! बड़ी चूक हुई।' उदय को देख कर तीनों राजकुमारियों की जान में जान आ गई। क्योंकि उसी ने अनेकों कष्ट झेल कर, बड़ी बड़ी मुसीबतों की परवाह न करके, जान पर खेल कर भी उनको बचाने की कोशिश की थी। वे उदय के पास दौड़ी आईं। तीनों की आँखों से आँसू बहने लगे।

इतने में उन्होंने देखा कि उदय की एक बाँह कटी है। सच पूछा जाए तो इस हलचल में किसी का ध्यान उस ओर न गया था। अब दाढ़ी वाला राजकुमारियों के कहने से दौड़ा हुआ गया और गुफा में जाकर पल भर में कटा हुआ हाथ उठा लाया। अञ्जन लगाते ही उदय का हाथ जैसे का तैसा हो गया।

और भी एक अजीब बात हुई। राक्षस के जादू से राजकुमारियाँ गूँगी बन गई थीं। लेकिन जब भैया की मूरत गायब हो गई तो राक्षस की माया छिन्न-भिन्न हो गई। इसी से उसका जादू चला गया और राजकुमारियाँ भी पहले की तरह बोलने-चालने लगीं।

इस तरह तीनों राजकुमारियों के साथ-साथ मालव-राज्य की लक्ष्मी को भी जीत कर उदय ने सानन्द श्रावस्ती-नगर में कदम रखा।

दाढ़ी वाले ने निशीथ के सर और धड़ को जोड़ कर मन्त्रों के प्रभाव से उसमें जान फूँक दी।

सारे राज में आनन्द मनाया जाने लगा। राजा और रानी ने जुड़वाँ भाइयों की बहुत प्रशंसा की और अपना एहसान जताया।

फिर महाराज ने तीनों बहनों को बुलाया और सुहासिनी का हाथ उदय के हाथ में, सुभाषिणी का हाथ प्रदीप के हाथ में और सुकेशिनी का हाथ निशीथ के हाथ में रख कर आशीर्वाद दिया। शुभ-मुहूर्त में तीनों भाइयों का तीनों बहनों से विवाह बड़ी शान के साथ हो गया।

उसके बाद महाराज दानशील ने दाढ़ी वाले को मालव देश का राज देना चाहा। लेकिन दाढ़ी वाले ने राज लेने से इनकार कर दिया। उसे राज-पाट की क्या ज़रूरत थी! प्रताप के पश्चात्ताप प्रगट करने पर उसका राज उसे लौटा दिया गया।

फिर महाराज ने जुड़वाँ भाइयों से कहा कि 'मेरा राज तुम तीनों आपस में बाँट लो।' लेकिन जुड़वाँ भाई यह नहीं चाहते थे। तब दाढ़ी वाले ने उदय को उन तीनों अण्डों की याद दिलाई, जो उसने राक्षस की गुफा में पाए थे। दाढ़ी वाले की सलाह से उदय ने उन तीनों को एक-एक योजन के फ़ासले पर फोड़ डाला और तुरन्त उन तीनों से सोने, चाँदी और हीरे-जवाहरात के तीन किले बन गए। तीनों भाई अपने बनाए हुए उन तीनों किलों में सुख से रहने लगे।

लेकिन इतने आनन्द में भी उदय एक बात नहीं भुला सका। दुष्ट राक्षस के जादू में पड़ कर, जो लोग जान गँवा कर पत्थर की मूरतें बन गए थे, उनकी याद उसके दिल में काँटे की तरह चुभ रही थी। उन अभागे वीरों की यादगार में उसने एक आलीशान महल खड़ा किया और उन सब मूरतों को उस महल में रखवा दिया। [समाप्त]

श्यामपुर के विद्यालय के प्रधानाध्यापक जी बूढ़े हो गए थे। इसलिए वे स्वयं नौकरी से हट गए। जब प्रधानाध्यापक की जगह खाली हो जाती है तो अक्सर प्रथम सहाध्यापक ही उस जगह पर नियुक्त किया जाता है।

श्यामपुर विद्यालय में प्रथम सहाध्यापक थे श्री दशरथ मिश्रजी। उनके प्रति छात्रों की बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। वे बहुत अच्छा पढ़ाते थे। बीच-बीच में लड़कों को खूब हँसाते भी रहते थे। शरारत करने वाले और वर्ग में ऊँघने वाले उनकी पैनी नज़र से कभी बच नहीं पाते थे। वे ऐसे लड़कों की खूब खबर लेते थे।

सिर्फ विद्यार्थी ही नहीं, अन्य अध्यापक भी उनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे। वे सब उम्मीद रखते थे कि दशरथ मिश्रजी ही प्रधानाध्यापक बनेंगे। इस शुभावसर के उपलक्ष्य में दावत देने के लिए उन सबने चन्दा भी जमा कर लिया था।

लेकिन हुआ यह कि मिश्रजी प्रधानाध्यापक नहीं बने और उनके बाद के दूसरे सहाध्यापक को भी यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। कहीं के दस अध्यापकों को भुला कर ग्यारहवें अध्यापक श्री सुन्दरसिंह को प्रधानाध्यापक बनाया गया। जब यह बात अध्यापकों को मालूम हुई तो वे सब मन ही मन सोचने लगे कि यह तो बड़ी धाँधली हुई।

सुन्दरसिंह को प्रधानाध्यापक-पद पर बिठाने के कारण कुछ और थे। बात यह थी कि वे उस उच्च पदाधिकारी के दूर के रिश्तेदार थे जिन को प्रधानाध्यापक को चुनने का भार सौंपा गया था। लेकिन प्रगट कारण यह बताया गया था कि 'बाकी सब अध्यापक बूढ़े हैं। सुन्दरसिंह जवान

कुसुम श्रीवास्तव

है, फुर्तीला है और लड़कों को अच्छी तरह काबू में रख सकता है।'

अन्य अध्यापकों ने बहुत कुछ कहा-सुना कि 'हम लोग सुन्दरसिंह से ज्यादा दिनों से काम कर रहे हैं, उस से अधिक अनुभव रखते हैं; हम लोग उस से ज्यादा उमर वाले तो ज़रूर हैं, लेकिन बूढ़े नहीं हैं।' लेकिन उनकी कौन सुनता! सुन्दर-सिंह सूट-बूट पहन कर शान के साथ प्रधाना-ध्यापक की कुर्सी पर जा बैठा।

सुन्दरसिंह भाग्यवान तो ज़रूर था, मगर वैसा बुद्धिमान नहीं था। उसे चाहिए था कि अन्य अध्यापकों का आदर करता। क्योंकि वे सभी उससे उमर में बड़े थे और काबिल भी ज्यादा थे। कुछ दिन तक तो उसे खूब नम्रता से काम लेना चाहिए था। लेकिन उसने वैसा न किया। उसे मालूम था कि अन्य अध्यापकों ने दशरथ मिश्र को दावत देने का इन्तज़ाम पहले ही कर लिया था। इसलिए वह उन सब से खार खाए बैठा था। वह अब उन सब को बात-बात में दिक़ करने लगा।

'आप लोग समय पर नहीं आते हैं। आप के वर्गों में बहुत हो-हल्ला मचता रहता है। आप सब अच्छी तरह नहीं पढ़ाते हैं।' यह कह कर, तरह तरह के बहाने बना कर, वह एक-एक को बहुत तंग करने लगा।

लेकिन बात यहीं पर नहीं रुकी। वह उन लोगों के वर्गों में निगरानी करने भी जाने लगा। बात-बात में नुक्ताचीनी करने लगा। सुन्दरसिंह को उच्च पद तो मिल गया था। लेकिन वैसी योग्यता वह कहाँ से लाता!

सब अध्यापकों से ज्यादा तो वह दशरथ मिश्र को सताने लगा। एक बार उसने उन्हें बुला कर कहा—'मुझे बरामदे से

जाते देख कर भी आप कुर्सी पर से नहीं उठे। यह बड़ी बुरी बात है।'

और एक बार उस ने कहा—'कल बाजार में भेंट होने पर भी आपने मुझे प्रणाम नहीं किया!'

यह सुन कर मिश्रजी को बहुत गुस्सा आ गया। फिर भी उन्होंने शान्त-स्वर में कहा—'भैया! तुम मुझ से उमर में छोटे हो। बड़ों को अपने से छोटी उमर वालों को प्रणाम नहीं करना चाहिए। इस से छोटों की आयु क्षीण हो जाती है!'

'ये सब बूढ़ों के अन्ध-विश्वास हैं। मैं इन सब की परवाह नहीं करता। इस के अलावा उमर में छोटा होने पर भी मैं आप से पद में बड़ा हूं। मैं प्रधानाध्यापक हूं। आप सब मेरी मातहत में काम करने वाले हैं। इसलिए आप सब को मेरे बड़प्पन का ख्याल रखना चाहिए!' सुन्दरसिंह बोला।

दशरथ मिश्र ने गुस्सा पी कर कहा—'बहुत अच्छा! आगे से यह सेवक अवश्य आपके आज्ञानुसार चलेगा।' इतना कह कर वे चले गए।

जब से सुन्दरसिंह प्रधानाध्यापक हुआ, तब से सभी बड़े हाकिमों की तरह वह भी शाम को रोज हवा खाने जाने लगा। वह छड़ी घुमाते हुए, बड़ी शान के साथ चला करता था, जिस से लोगों की नजर उस पर पड़े।

एक दिन वह अपनी आदत के मुताबिक हवा खाने गया हुआ था कि सहसा बादल घिर आए और पानी बरसने लगा।

सुन्दरसिंह पानी से बचने के लिए सड़क के किनारे के एक पेड़ के तने की ओट में जा खड़ा हो गया। लेकिन जब बारिश न रुकी तो पेड़ पर से पानी की धाराएं सीधे उसके सिर पर गिरने लगीं। भीगने की उसे ज्यादा फिक्र न थी। फिक्र थी नए बूट

की। उन का उसे अफ़सोस ज़रूर था। आखिर उसने बूट उतार कर बाएँ हाथ में उठा लिए और एक झोंपड़ी की ओर दौड़ने लगा। इतने में उसने सुना कि कोई उसे पुकार रहा है—'प्रधानाध्यापक जी!' वह रुक गया। एक आदमी पुराना छाता लगाए उसकी ओर आ रहा था।

सुन्दरसिंह ने सोचा कि ज़रूर कोई जाना-पहचाना आदमी होगा। वह नहीं चाहता था कि बूट हाथ में लिए, यों पानी में भीगते हुए उसे कोई देख ले। लेकिन कोई चारा न था। आखिर उसने कुछ सोच कर जल्दी-जल्दी बूट पहन लिए। मन ही मन बहुत झुंझला रहा था कि यह कैसी बला है।

छाते वाला आदमी अब एकदम नज़दीक आ गया था: और वह दूसरा कोई नहीं, वही दशरथ मिश्र था। सुन्दरसिंह शरम से कट गया। वह सोचने लगा कि आग्रह करने पर वह छाते के नीचे जाए या न जाए! दशरथ मिश्र ने समीप आकर, छाते की छड़ी को बगल में दबाया और हाथ जोड़ कर कहा—'नमस्ते! प्रधानाध्यापक जी!' बस, इतना कह कर वे उलटे पाँव वहाँ से चल दिए। पीछे मुड़ कर देखा तक नहीं।

सुन्दरसिंह जल-भुन कर खाक हो गया। दाँत चबाने लगा—जैसे मिश्रजी को कच्चा ही चबा जाएगा। दूसरे दिन उसने उच्च अधिकारी से जाकर दशरथ मिश्र की शिकायत कर दी। उसने उलटे सुन्दरसिंह को फटकार कर कहा—'इस तरह रोब-दाब से तुम कितने दिन हुकूमत चलाओगे! अपनी नम्रता से सब को जीत लो! तभी सब लोग तुम्हारी बड़ाई करेंगे।'

उस दिन से सुन्दरसिंह का रुख बदल गया। सारी शेखी हवा हो गई। अब वह कभी नहीं कहता कि लोग उसे जहाँ देखें, वहीं प्रणाम करें।

पुराने जमाने में किसी शहर में चार यार रहते थे। चारों गरीब थे और इस वजह से बहुत तङ्ग थे।

एक दिन उनमें से एक ने कहा—'भाइयो! मनुष्य चाहे कितना ही सुन्दर क्यों न हो, कितना ही बुद्धिमान और साहसी क्यों न हो, उसके पास दौलत न हो तो उस की कोई इज्जत नहीं करता। जिस के पास पैसा नहीं, उसे देख कर रिश्तेदार भी मुँह फेर लेते हैं और भाग कर अपना पिंड छुड़ाना चाहते हैं। उसकी ब्याहता भी उससे सीधे मुँह बात नहीं करती; बच्चे उस के प्रति आदर नहीं रखते। जिस के पास पैसा नहीं, उसके लिए समाज में जगह नहीं है। सचमुच दरिद्र होकर जीने से मर जाना ही अच्छा! इसलिए चलो, अब हम भी किसी न किसी तरह कुछ पैसा कमाने की कोशिश करें।'

उसकी बातें यारों को भाईं। उन्होंने सिर हिलाया। बहुत सोचने पर पैसा कमाने का एक उपाय उन्हें सूझा। उन्होंने सोचा—'चलो, पहले हम सारे देश में घूम आएँ। कहीं न कहीं रोजी लग ही जाएगी।'

यह सोच कर चारों यार घर से निकले और जाते जाते अवन्तीपुर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपनी थकान मिटा ली और आगे बढ़ चले। थोड़ी दूर जाने के बाद उन्हें एक साधू दिखाई दिया। यारों ने बड़ी श्रद्धा से उसे दण्डवत किया और उसकी सेवा-टहल में लग गए।

वह साधू उनकी सेवा से बहुत खुश हुआ और कुशल-प्रश्न करके बोला—'बच्चो! तुम लोग कहाँ जा रहे हो?'

यारों ने कहा—'भगवन्! हम लोग पैसा कमाने के इरादे से निकले हैं। हम ने निश्चय कर लिया है कि या तो खूब पैसा

कमा कर घर लौटेंगे या यों ही भटकते-भटकते जान दे देंगे। क्योंकि गरीबी से हम एकदम तङ्ग आ गए हैं। गरीब बन कर हम अब जीना नहीं चाहते।'

साधू ने उनकी बातें गौर से सुनी और कुछ देर ध्यान-मग्न हो गया। इसी बीच एक ने बिनती की—'भगवन्! यत्न किए बिना लक्ष्मी नहीं पाई जाती। कष्ट उठाए बिना सुख नहीं मिलता। हाँ, साधू-सन्तों की कृपा से सब कुछ सहल हो जाता है। आप कोई ऐसा उपाय बताइए, जिससे हमें गुप्त-धन मिले। हम आपकी कृपा कभी नहीं भूलेंगे।'
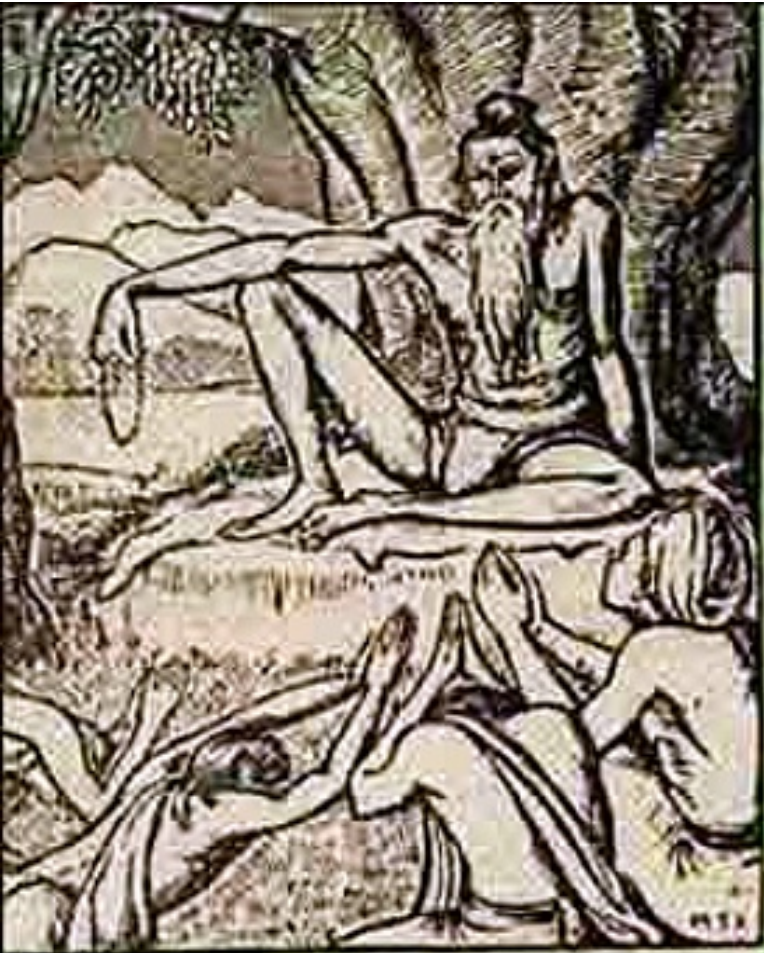
आखिर उस साधू को उन पर दया आ गई। उसने अपने मन्त्र-बल से चार डण्डे बनाए, जिनके सिरे बहुत नुकीले थे। उसने उन्हें चारों को देकर कहा—'बच्चो! हमें तुम पर तरस आ गया। लो, ये डण्डे पकड़ लो। इन्हें हाथ में पकड़े विन्ध्याचल से उत्तर की ओर चलते जाना। राह में एक-एक का डण्डा जहाँ गिर पड़े, वहाँ खोदने पर उसे गुप्त-धन मिलेगा। अब तुम लोग जाओ! भगवान तुम्हारा भला करे!' यों आशीर्वाद देकर साधू ने चारों को विदा किया।

डण्डे पाकर यार लोग फूले न समाए। अब उनके पैर धरती पर नहीं पड़ते थे।

साधू के आदेशानुसार वे लोग विन्ध्याचल से उत्तर की ओर चले। जाते-जाते एक मित्र का डण्डा नीचे गिर पड़ा। उस जगह खोदने पर उसको बहुत सा तांबा मिला। उसने मित्रों से कहा—'यारो! चलो! हम लोग यह तांबा लेकर घर लौट चलें। इसे बेच लेंगे तो हमें बहुत सा पैसा मिल जाएगा और उसे चारों बाँट लेंगे। बस, हम लोगों की गरीबी दूर हो जाएगी।'

यह सुन कर यारों ने कहा—'अरे बुद्धू! तांबे को बेचने से कितना पैसा

मिलेगा ? हम चारों आपस में बाँटेंगे क्या ? हमारे साथ आगे चलो ! देखें, और क्या-क्या गुल खिलता है !'

लेकिन ताँबे-वाले ने इनकार कर दिया। उसने कहा—'मेरे लिए यह ताँबा काफी है।' यह कह कर वह लौट गया। तीनों यार उसकी हँसी उड़ाते आगे बढ़ चले।

थोड़ी दूर जाने पर दूसरे का डण्डा ज़मीन पर गिरा। वहाँ खोदा तो उसे बहुत सी चाँदी मिली। उसने भी कहा—'चलो, लौट चलें ! चाँदी आपस में बाँट लेंगे।' लेकिन बाकी दोनों ने इस बार भी लौटने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा—'अरे पगले ! पहली बार ताँबा मिला है; अब की चाँदी मिली है। आगे ज़रूर सोना मिलेगा। अभी लौट जाना एकदम पागलपन है।' यह कह कर वे दोनों हँसते हुए आगे बढ़ चले। चाँदी लेकर दूसरा मित्र घर लौट गया।

बाकी दोनों दोस्त कुछ ही दूर बढ़े थे कि तीसरे दोस्त का डण्डा भी ज़मीन पर गिरा। दोनों ने उत्सुकता से खोदा। सचमुच वहाँ बहुत सा सोना दिखाई दिया। तीसरे ने कहा—'बस, यह सोना आपस में बाँट लें और घर लौट चलें।'

लेकिन चौथा राज़ी न हुआ। उसने सोचा—'पहली बार ताँबा, दूसरी बार चाँदी और तीसरी बार सोना ! अब की ज़रूर हीरे-जवाहरात मिलेंगे।' यह सोच कर उसने दोस्त को लौटने दिया और अकेले आगे बढ़ा।

वह बड़ी दूर तक चलता गया। आखिर भूख-प्यास से बेहाल हो गया। थकावट के मारे पैर पत्थर जैसे भारी हो गए। घसीटते हुए कुछ दूर जाने के बाद आखिर एक जगह उसका डण्डा ज़मीन पर गिर पड़ा। बड़ी आशा से वह वहाँ खोदने लगा। बड़ी देर बाद अन्दर से धमाके की आवाज़

हुई और अचानक उस गढ़े से निकल कर एक आदमी उसके सामने आ खड़ा हुआ। उस अजीब आदमी के सिर पर एक चक्र था, जो कुम्हार के चाक की तरह तेज़ी से घूम रहा था। उसके सारे बदन से खून बह रहा था। वह 'हाय! हाय!' कर रहा था। फिर भी उस चक्र को सिर से उतार कर ज़मीन पर रखने की कोशिश नहीं करता था। खोदने वाले ने अचरज के साथ पूछा—'भाई, तुम्हारी यह क्या हालत है?' मुँह की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि वह चक्र उड़ कर उसके सिर पर जा बैठा और घूमने लगा। उसकी सारी देह लहू-लुहान हो गई और बहुत पीड़ा होने लगी।

यह लोभी यार अब तो हाथ जोड़ कर उस व्यक्ति से कहने लगा—'भैया! तुम ने यह कैसी बला मेरे सिर पर लाद दी? मेरी जान जा रही है। कृपा करके इस चक्र को मेरे सिर से उतार लो! मुझे हीरे-जवाहर कुछ नहीं चाहिए! सही-सलामत रहा तो भीख माँग कर पेट भर लूँगा। किसी तरह इस बला से मुझे छुटकारा दिला दो भाई!' यह कह कर वह बेहद गिड़गिड़ाने लगा।

तब उस आदमी ने कहा—'भैया! मैं भी तुम्हारी ही तरह एक मामूली आदमी हूँ। मैं मन्त्र-तन्त्र कुछ नहीं जानता। लालच के मारे आकर इस फन्दे में फँस गया। बता नहीं सकता कि क्या-क्या भुगतना पड़ा मुझे! मैं यहाँ आया द्वापर युग में! जाने, तब से कितनी सदियाँ बीत गईं! जिस तरह तुम्हारे आने से मुझे छुटकारा मिला, उसी तरह और किसी के आने पर ही तुम्हें छुटकारा मिलेगा। तब तक तुम्हें यह यन्त्रणा सहनी ही होगी। तुमने मुझे बड़ी आफ़त से बचाया! धन्यवाद!' इतना कह कर वह अपने घाव भरे सिर को सहलाता हुआ वहाँ से चलता बना।

जम्बू-द्वीप के बलभद्र-पुर नगर पर विक्रम नाम का राजा शासन करता था। उसके लड़के का नाम माधववर्मा था। राजकुमार माधववर्मा बहुत खूबसूरत था। बहुत सी सुन्दरी राजकुमारियों के चित्र दिखाने पर भी उसने उनसे ब्याह करना मंजूर न किया।

एक दिन वह राजकुमार हिमालय की घाटियों में शिकार खेलने गया। बीच जङ्गल में ऐसा लगा जैसे कोई पुकार रहा है। उस ने पीछे मुड़ कर देखा तो एक सुन्दरी ने सामने आकर कहा—'हे राजकुमार! मैं चन्द्रकला नाम की एक गन्धर्व-कुमारी हूँ। तुम्हारी रानी बनने योग्य एक ही सुन्दरी है और वह है मेरी सखी सुलोचना। वह लक्ष-द्वीप के राजा की बेटी है। तुम्हारे अस्तबल में एक सबसे दुबला घोड़ा है। उस पर चढ़ कर जाओगे तो तुम लक्ष-द्वीप की राजधानी दीप्ति-नगर में जा पहुँचोगे। वहाँ जाकर फूल बेचने वाली मालिन से मिलो। उसे मेरा नाम बता देना। बस, तुम्हारा काम बन जाएगा।' गन्धर्व-कुमारी की बातें सुन कर राजकुमार बहुत खुश हुआ और तुरन्त वहाँ से चलने लगा। लेकिन चन्द्रकला ने उसे रोक कर कहा—'ठहरो! पहले वादा करो कि ब्याह होने के बाद तुम वह घोड़ा मुझे दे दोगे। मुझे उससे कुछ काम है।' जब राजकुमार ने वादा किया तो वह अदृश्य हो गई और राजकुमार चकित-मन से घर लौटा।

घर आते ही सीधे वह अस्तबल में पहुँचा। उसे देख कर वह दुबला घोड़ा हिनहिनाने लगा। राजकुमार ने नजदीक आकर उसकी पीठ पर हाथ फेरा। बस, घोड़ा हृष्ट-पुष्ट हो गया। इतना ही नहीं; उसके पङ्ख भी निकल आए। अचेह साईस जो वहाँ खड़ा था, यह देख कर दङ्ग रह गया। राजकुमार ने उसको सारा समाचार

कल ही ब्याह है। उसका नाम है विद्याधर। वह देखने में तुम्हारे जैसा खूबसूरत तो नहीं; लेकिन शादी तय हो चुकी है। अब बेचारी सुलोचना क्या कर सकती है!' तब प्रचेष्ट ने कहा—'इतनी दूर आने के बाद अब हम दुलहिन को देखे बिना कैसे लौटें!' यह सुन कर मालिन एक टोकरी ले आई। उसने माधववर्मा को उसमें बिठा दिया और उसे फूलों से ढाँप दिया। प्रचेष्ट टोकरी उठा कर पीछे-पीछे चला। दोनों बेधड़क राज-महल में पहुँच गए।

सुना दिया। तब प्रचेष्ट ने कहा—'राज-कुमार! मुझे भी साथ ले चलो!' राजकुमार ने कहा—'अच्छा! चलो!' वह उछल कर घोड़े पर चढ़ गया। प्रचेष्ट घोड़े की दुम पकड़ कर लटकने लगा। घोड़ा आसमान में उड़ा और पल भर में दोनों लक्ष-द्वीप की राजधानी दीसनगर पहुँच गए।

राजकुमार माधववर्मा घोड़े से उतर कर तुरन्त मालिन के घर गया। उससे सारा किस्सा कह दिया। मालिन सब कुछ सुन कर बोली—'हाय! तुम कल ही आते तो कितना अच्छा होता! सुलोचना की शादी कुशद्वीप के राजकुमार से ठीक हो गई।

माधववर्मा को देखते ही सुलोचना का हृदय बेकाबू हो गया। क्योंकि विद्याधर इस के सामने ऐसा लगता था जैसे सूरज के सामने तारा। उसने धीरे से मालिन के कान में कहा—'मालिन! मैं विद्याधर को नहीं चाहती। इनसे कहो कि कल विवाह-मण्डप में मैं इशारा करूँगी। वे तैयार रहें और घोड़े पर चढ़ा कर मुझे उड़ा ले जाएँ।' माधववर्मा फूला न समाया और टोकरी में बैठ कर बाहर आ गया।

माधववर्मा के साथ प्रचेष्ट ने भी सुलोचना को देख लिया था न? उसके मन में लालसा जगी कि किसी न किसी तरह सुलोचना से

वह ब्याह कर ले। इसलिए दूसरे दिन उस ने राजकुमार के पीने के दूध में बेहोशी की दवा मिला दी। उसे पीकर राजकुमार गहरी मूर्छा में डूब गया। प्रचेष्ट घोड़े पर चढ़ कर अकेले लग्न-मण्डप में गया। राजकुमारी के इशारा करते ही उसने उसे घोड़े पर चढ़ा लिया और उड़ गया।

बेचारी सुलोचना को क्या पता! उसने सोचा कि उसे माधववर्मा ही घोड़े पर उड़ाए लिए जा रहा है। प्रचेष्ट ने सागर पार करके काञ्चनपुर नाम के शहर के नज़दीक एक जङ्गल में घोड़े को उतारा और सुलोचना से कहा—'समय पर माधववर्मा सो गया! मैंने सोचा, यह अभागा तुमसे शादी करने के लायक नहीं। इसलिए मैं ही तुम्हें उठा लाया। तुम मुझ से ब्याह कर लो।'

सयानी सुलोचना ने अपने मन की हैरानी और चिंता उस विश्वास-घातक पर प्रगट न होने दी। वह मुसकुराती हुई बोली—'कौन जाने, किसके भाग्य में क्या लिखा है! अच्छा, मुझे बड़ी भूख लगी है। यह कङ्गन ले जाओ और दूर से दिखाई देने वाले उस शहर में बेच कर खाने-पीने की चीज़ें खरीद ले आओ!' मूर्ख प्रचेष्ट फूल कर कुप्पा हो गया और कङ्गन लेकर तुरन्त शहर की ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर जब उसने कङ्गन बेचना चाहा तो चोर समझ कर राजा के सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और बन्दीघर में डाल दिया।

प्रचेष्ट ने ज्यों ही पीठ फेरी, त्यों ही सुलोचना घोड़े पर चढ़ गई और उड़ कर जम्बू द्वीप के काशी नगर में जा उतरी। उतरते ही उसे बहुत आश्चर्य हुआ। क्योंकि दिन होने पर भी सड़कों पर कोई आदमी दिखाई न देता था। उसने पूछ-ताछ की तो एक बुढ़िया ने कहा—'रोज़ ठीक दोपहर के बारह बजे गङ्गा किनारे से एक

गैंडा नगर में घुस आता है और जो भी दीख पड़ता है उसे मार डालता है। राजा ने घोषणा भी की है कि जो कोई इस गैंडे को मार डालेगा, उसे वह अपनी बेटी के साथ आधा राज भी देगा।' इतना सुनते ही सुलोचना ने एक राजकुमार का भेष बना लिया और तलवार हाथ में लेकर गैंडे की राह देखने लगी।

बारह बजते ही वह गैंडा धरती को कँपाता हुआ आ पहुँचा। सुलोचना ने ठीक उसकी गरदन पर तलवार चलाई।

तुरन्त गैंडा गायब हो गया और उसकी जगह एक मुनि प्रकट होकर कहने लगे—

'सुलोचना! तुमने मुझे शाप-मुक्त कर दिया है। अब जो चाहो माँग लो!' सुलोचना प्रणाम करके विनय-सहित बोली—'मुनिवर! मेरा ब्याह विद्याधर नाम के राजकुमार से निश्चित हुआ था। लेकिन माधववर्मा को देख कर मैं मुग्ध हो गई। इस तरह 'चौबे गए छब्बे बनने, तो रह गए दुब्बे होकर' वाली हालत हो गई मेरी। ऐसा वर दीजिए जिससे मैं फिर माधववर्मा को पा सकूँ।'

उसकी बात सुन कर मुनिवर ने कहा—'सुनो! कुछ ही दिनों में माधववर्मा और विद्याधर दोनों एक जहाज पर चढ़ कर हीरे-जवाहरात के व्यापारियों के रूप में यहाँ आ पहुँचेंगे। उस समय तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। तुम्हें यह सोच कर अफसोस करने की जरूरत नहीं कि तुमने विद्याधर को धोखा दिया। क्योंकि उसने पहले ही काशीराज की पुत्री जयन्ती से विवाह करने का निश्चय कर लिया था। वह तुमसे ब्याह करने को राजी हुआ था सिर्फ राज्य के लोभ से। अब उसमें और माधववर्मा में बड़ी मित्रता हो गई है। इसलिए तुम्हारी इच्छा पूरी होने में कोई दिक्कत न होगी।' तब सुलोचना ने कहा—'लेकिन भगवन्!

आपको गैंडे का रूप क्यों मिला ?' 'यह सब तुम्हें बाद में मालूम हो जाएगा !' इतना कह कर मुनिवर अदृश्य हो गए।

उनके अदृश्य होते ही सुलोचना पीछे मुड़ी कि घोड़े पर सवार हो जाए ! लेकिन घोड़ा कहीं दिखाई न पड़ा। वह उसे चारों ओर ढूँढने लगी। इतने में काशी-राज को मालूम हो गया कि किसी राजकुमार ने गैंडे को मार डाला है। वे खुशी-खुशी हाथी पर चढ़ कर आए और सुलोचना को जो पुरुष-वेष में थी, अपने साथ ले गए।

राजा ने चाहा कि जल्दी इस वीर राजकुमार का अवन्ती से ब्याह कर डाले। लेकिन सुलोचना ने बहाना बना कर कहा कि 'एक जहाज आने वाला है। उसके आने पर ही ब्याह हो सकेगा।'

राजा के नौकर गङ्गा के किनारे उस जहाज की राह देखने लगे। जहाज के आते ही सुलोचना को खबर पहुँचाई गई। उसने हुक्म दिया कि 'व्यापारी आकर अपने हीरे-जवाहरात उसे दिखाएँ।' वे तुरन्त अपना चुना हुआ माल लेकर राज-महल में गए। उन्हें देखते ही सुलोचना ने पहचान लिया कि दोनों नौकरों में से एक माधववर्मा है और दूसरा विद्याधर। उसने तुरन्त काशी-राज के पास आकर कहा कि 'आज रात ही को ब्याह का प्रबन्ध कीजिए और सब तरह के दो-दो गहने बनवाइए।' राजा को बहुत अचरज हुआ कि दो-दो गहने किस काम आएँगे। फिर भी उसने तुरन्त सब तैयारियाँ कराईं।

सुलोचना ने उस हीरे-जवाहर के व्यापारी को बुला कर चुपके से कहा—'भैया ! तुम्हारे जो दोनों नौकर हैं वे दो राजकुमार हैं। आज ही रात को उन दोनों का ब्याह होने वाला है। इसलिए तुम जाओ और दोनों को बना-ठना कर बारात ले आओ।'

व्यापारी सिर हिला कर चला गया। उस रात मण्डप में दुल्हिन के लिए दो आसन बिछाए गए। सवाल उठा कि यह दूसरी दुल्हिन कौन है? तब सुलोचना ने अपनी पगड़ी खोल कर उतार डाली और कहा—'मैं ही यह दूसरी दुल्हिन हूँ।' सब लोग दङ्ग रह गए। इतने में बारात आई। विद्याधर और माधववर्मा दोनों दूल्हे बने हुए थे। तब सुलोचना विद्याधर को जयन्ती के पास ले गई और बोली—'लो, यही तुम्हारे दूल्हा हैं।' सब लोगों ने उसे पहचान लिया और बहुत खुश हुए। क्योंकि पहले उसी के साथ उसका ब्याह तै हुआ था। इतने में कहीं से चन्द्रकला भी वहाँ आ पहुँची। यह वही गन्धर्व-कुमारी थी, जिसने माधववर्मा को पहले सुलोचना की बात बताई थी। उस के साथ और एक युवक गन्धर्व भी था। चन्द्रकला उसे दिखा कर हँसती हुई बोली—'लो, यही मेरे पतिदेव हैं। इनका नाम चित्राङ्ग है। इन्हीं ने उड़ने वाले घोड़े के रूप में आप सब को ढोया था।' यह सुन कर सब लोग अचरज से पूछने लगे—'ये घोड़ा कैसे बन गए?'

तब चित्राङ्ग ने बताया—'एक बार चन्द्रकला और मैं दोनों विहार करने गए। राह में एक मुनि को तप करते देख कर मैंने हँसी उड़ाई। इस से उस मुनि को क्रोध आ गया और उन्होंने शाप दिया—'तुम घोड़े की तरह हिनहिना रहे हो! इसलिए जाओ! घोड़ा बन जाओ!' तब मुझे भी क्रोध आ गया और मैंने शाप दिया—'तुमने इतनी छोटी सी बात के लिए मुझे शाप दिया। इसलिए जाओ! तुम भी गैंडा बन जाओ!' बस, मुनि गैंडा बन गए। उसी गैंडे को सुलोचना ने मारा था। उसके मरते ही मुझे शाप से छुटकारा मिल गया।' तब दोनों राजकुमारों और राजकुमारियों का ब्याह हो गया। गन्धर्व-दम्पति ने उनको आशीर्वाद दिया।

अक्षय वर

किसी समय छिदर्भ-देश पर भग्नकर्ण नाम का राजा राज करता था। उस बेचारे के बहुत दिनों तक कोई बाल-बच्चे न हुए। जब भग्नकर्ण की उमर ढलने लगी और बुढ़ापा नजदीक आने लगा, तब एक दिन हिमालय पर रहने वाले गज-शृङ्गी नामक मुनिवर छिदर्भ में पधारे। उनके आने की खबर सुन कर भग्नकर्ण ने सपरिवार उनका स्वागत-सत्कार किया। आखिर चरण धोकर चरणामृत पिया और प्रार्थना की—'आप हमारा आतिथ्य स्वीकार करें।'

राजा की भक्तियुत सेवा से प्रसन्न होकर गजशृङ्गी ने कहा—'राजन्! हम तुम से बहुत प्रसन्न हैं। बोलो, क्या चाहते हो?'

तब राजा भग्नकर्ण ने कहा—'मुनिवर! आपकी कृपा से मुझे किसी चीज़ की कमी नहीं। लेकिन वंश का उद्धार करने के लिए कोई पुत्र नहीं है। यही चिन्ता मुझे सता रही है। आप कृपा कर एक पुत्र दीजिए, जिससे इस लोक में मुझे पिता बनने का आनन्द प्राप्त हो और परलोक में पुन्नाम-नरक से रक्षा हो सके।'

प्रसन्न होकर मुनिवर ने राजा को पुत्र-प्राप्ति का वर दिया और कहा—'राजन्! हम अभी जा रहे हैं। फिर तुम्हारे पुत्र के इक्कीसवें जन्म दिन को दर्शन देंगे।' यह कह कर गजशृङ्गी ने एक बोतल निकाल कर पाँवों में कोई लेप लगाया और आँख बन्द कर कुछ मन्त्र पढ़े। फिर क्षण में अन्तर्धान हो गए। जाते-जाते उन्होंने कुछ कहा; पर राजा को वह सुनाई नहीं पड़ा। क्योंकि वह ज़रा ऊँचा सुनता था।

एक साल भी पूरा नहीं हुआ कि भग्नकर्ण के एक पुत्र पैदा हुआ। सारे राज में बड़ी धूम-धाम से उत्सव मनाए गए। भोज-भण्डारे हुए और कई दिनों तक लगातार सदाव्रत

मल्लिकांत शास्त्री

बैठते रहे। राजा ने शास्त्राचार के अनुसार अपने चिर-प्रतीक्षित पुत्र का 'शरगामी' नाम रखा। इकलौता बेटा होने के कारण शरगामी लाड़-प्यार की गोदी में पलने लगा। उसमें किसी के प्रति ज़रा भी श्रद्धा न थी। बात तो वह किसी की मानता नहीं था। ढलती उम्र में पैदा हुआ था वह। इसलिए राजा उस पर जान देता था। किसी को कुछ कहने का साहस नहीं होता था। कभी कोई साहस करके कुछ कहता भी था तो राजा सुनता नहीं था।

शरगामी के कारनामे उतने काले नहीं थे, जितनी तेज़ उसकी ज़बान थी। जो उस की लातों से नहीं घबराते थे, वे उसकी बातें सुन कर काँप उठते थे।

यों मनमाने ढङ्ग से शरगामी सयाना हुआ और उसका इक्कीसवाँ जन्म-दिन आ पहुँचा। उस दिन बूढ़े राजा ने भरे दरबार में शास्त्राचार के अनुसार शरगामी को अपने आधे सिंहासन पर बिठा दिया। उस आनन्द के समय गजशृङ्गी अचानक वहाँ आ टपके। राजा भ्रमकर्ण ने मुनिवर को पहचाना नहीं। शरगामी ने पूछा—'अरे! यह भिखमङ्गा कौन है? इसे किसने आने दिया?'

उसकी बात सुन कर मुनिवर को क्रोध आ गया। उन्होंने उपकारी को भूल जाने वाले उस राजा को और साधु का अपमान करने वाले उस नादान छोकरे को शाप देने के लिए कमण्डल से जल हाथ में लिया। यह देख कर राजा भ्रमकर्ण डर से काँप उठा। उस ने झट सिंहासन से उतर कर मुनि के पाँव पकड़ लिए और गिड़गिड़ा कर क्षमा-याचना की। तब जाकर गजशृङ्गी का क्रोध शान्त हुआ। बूढ़े राजा ने उनको अपने निकट ही एक ऊँचे आसन पर बिठलाया। त्यागी-तपस्वी विषय-विलासियों की तरह मुलायम गद्दों पर नहीं बैठ सकते। इसलिए गजशृङ्गी

उस आसन पर मृग-चर्म बिछा कर बैठ गए, और शरगामी की तरफ़ घृणा के साथ देखने लगे। बात यह थी कि शरगामी ने धीमे स्वर में जो कहा था, उसे गजशृङ्गी ने सुन लिया था। फिर शरगामी ने उनसे क्षमा भी नहीं माँगी थी। राजा ऊँचा सुनता था; इसलिए लड़के की बात वह सुन नहीं सका था। फिर भी गजशृङ्गी ने शान्त होकर शरगामी को इस बार क्षमा करने का ही निश्चय किया।

'राजन्! हम तुम्हारे पुत्र को आशीर्वाद देने आए हैं।' गजशृङ्गी ने कुछ ज़ोर से कहा जिससे राजा को साफ़ सुनाई पड़े।

'जी! आपकी कृपा!' राजा बोला।

'हम तीन वर देने आए थे। लेकिन अब एक से अधिक देने की इच्छा नहीं रह गई है। क्या किया जाए; इसका भाग्य ही ऐसा है!' गजशृङ्गी ने कहा।

तब भग्नकर्ण ने बेटे की तरफ़ मुड़ कर कहा—'बेटा! तुम महात्मा से वर माँगो!' लेकिन इतने में उसे शङ्का हुई और विनीत-स्वर में मुनि से बोला—'मुनिवर! क्या इसके बदले मैं कुछ माँग लूँ?'

मुनि ने मुँह बिचका कर कहा—'वह सयाना हो गया है। इसलिए उसे ही माँगना होगा। अगर तुम उसे इशारा करोगे या कुछ सुझाओगे तो हमें बर्दाश्त नहीं होगा।'

शरगामी जो अब तक चुप बैठा था अचानक बोल उठा—'मुनिवर! मुझे तीन वर चाहिए।'

'यह असम्भव है। हम तो एक ही वर देंगे। जैसा माँगोगे वैसा फल भुगतोगे!' गजशृङ्गी ने कहा। ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा था त्यों-त्यों शरगामी के प्रति उनकी घृणा बढ़ती ही जा रही थी।

'मैं तीन वर चाहता हूँ।' शरगामी ज़िद करने लगा।

तब मुनि की समझ में आ गया कि उन्होंने जो एक वर दिया था, उसी के अन्दर यह तीन वर माँग रहा है। उनका क्रोध बढ़ गया। 'यह बड़ा अन्याय है।' वे बोले।

'इसमें अन्याय कुछ भी नहीं। मैंने एक ही वर माँगा। वह यह है कि मुझे तीन वर चाहिए। इसमें आपको कुछ शङ्का हो तो इन पण्डितों से पूछ लीजिए।' शरगामी ने जवाब दिया।

पण्डितों ने इस विषय पर बहुत वाद-विवाद किया। अन्त में उन्होंने निर्णय किया कि 'एक वर की ठीक-ठीक परिभाषा नहीं हो सकती। क्योंकि छोटे से छोटे वर में भी अनेक वर छिपे रह सकते हैं। पुराने ज़माने में यमराज ने सावित्री को वर दिया था कि सौ लड़के पैदा होंगे। याने वे सौ वरों के बराबर हुए। सत्यवान को जो प्राण-दान दिया उसको मिला कर एक सौ एक वर हो गए। जब यमराज ही इसकी ठीक व्याख्या नहीं कर सके तो हमारी क्या बिसात!' पण्डित लोग बोले।

आख़िर गजशृङ्गी लाचार हो गए। 'अच्छा! जल्दी तीनों वर माँग लो!' उन्होंने कहा।

'मैं आपकी दाढ़ी-मूँछें सफाचट देखना चाहता हूँ।' शरगामी मुसकुरा कर बोला।

दूसरे ही क्षण उस भरे दरबार में मुनिवर गजशृङ्गी की दाढ़ी-मूँछें गायब हो गईं। सब लोग हाहाकार करने लगे। क्रोध-परवश होकर मुनि ने शाप देने के लिए जल हाथ में लिया।

यह देख कर शरगामी भी काँप गया। 'आपकी दाढ़ी-मूँछ लौट आएं।' उसने दूसरा वर माँगा।

यह सुन कर मुनि ज़रा शान्त हुए। 'तुम्हारे दो वर खतम हो गए। अब एक

ही वर बच रहा। झटपट माँग लो!' मुनि ने कहा। 'मुझे तीन वर चाहिए।' शरगामी ने कनखियों से देख कर कहा। गजशृङ्गी के माथे पर पसीना छूट पड़ा।

'तुम्हारे जैसा कृतघ्न मैंने कहीं नहीं देखा। तुम इस तरह वर माँगते जाओगे और हम कब तक देते जाएँगे? क्या तुम्हारे लिए हम अपने जप-तप छोड़ कर यहाँ पड़े रहेंगे?' मुनि ने भर्राई आवाज़ में पूछा।

अन्त में तै हुआ कि शरगामी के वरों का लेखा-जोखा लिखने के लिए एक मुन्शी को नियुक्त किया जाए। तुरन्त एक मुन्शी नियुक्त किया गया। तब मुनि ने वचन दिया कि उनकी अनुपस्थिति में शरगामी जो जो वर माँगेगा, मिलते रहेंगे। यह वचन देकर वे अन्तर्धान हो गए। उस दरबार में एक क्षण भी रहना उनके लिए दुस्सह हो गया था।

दिन बीतते गए। शरगामी ने आगे का ख्याल करके अनगिनत वर जमा कर रखे।

मुनि उससे खार खाए बैठे थे। उसकी ज़बान से निकली हर मामूली बात को वे वर ही मानते थे और तुरन्त पूरी कर देते थे। ज़रा उमस होती और शरगामी सोचता— 'ठण्डी हवा चले तो अच्छा हो।' तुरन्त इतनी ठण्डी हवा चलने लगती कि खून भी जम जाए। तब शरगामी हैरान होकर कहता— 'मैं ऐसी हवा नहीं चाहता।' बस, हवा बिल्कुल बन्द हो जाती और उसका दम घुटने लग जाता। लाचार होकर उसे और एक वर माँगना पड़ता। कभी-कभी ऐसे दिन भी आते कि एक मिनट में उसके पाँच-पाँच वर यों ही चले जाते। जिस तरह शरगामी वर बढ़ाने की ज़िद लगा बैठा था, उसी तरह गजशृङ्गी भी उन वरों को व्यर्थ करने की ज़िद किए बैठे थे।

इतना ही नहीं, धीरे-धीरे ऐसा मालूम होने लगा, जैसे मुनिवर ने यह निश्चय कर

लिया हो कि शरगामी को इन वरों से कुछ भी सुख या लाभ न पहुँचने देंगे। इसके लिए जो भी मौका मिलता, उसे वे बेकार नहीं जाने देते। अगर कभी शरगामी सोचता कि 'काश! इस समय मैं किसी वन में किसी झरने के किनारे बैठा होता!' तो तुरन्त वह अपने को वहाँ बैठा पाता; पर साथ ही उस के चारों ओर शेर-चीते आदि भी दहाड़ते दीख पड़ते। अगर कभी सोचता कि 'मुझे एक इन्दुमुखी सुन्दरी चाहिए' तो चन्द्र-वदना युवती तो उसे मिल जाती; लेकिन उसकी बाकी देह कोढ़ या ऐसे ही किसी घृणित रोग से पीड़ित पाई जाती।

यही क्यों! शरगामी को अपने मन का हरेक विचार बहुत सोच-समझ कर प्रकट करना होता। नहीं तो कभी-कभी बहुत दर्दनाक नतीजा उसे भोगना होता। इस कारण से शरगामी को दूसरों से बातें करते वक्त भी पुरानी आदतें बदलनी पड़ीं। उदाहरण के लिए एक बार किसी मामले में एक सौदागर से बातें करते वक्त उसके मुँह से निकल पड़ा—'हम दोनों फिर मिलेंगे।' इसका नतीजा यह हुआ कि वे दोनों सच-मुच ही एक दूसरे से चिपट गए। तीन वर माँगने पर इस बला से उसका पिण्ड छूट सका। इसीलिए शरगामी को भोजन करते वक्त भी माँग-माँग कर खाने की आदत छोड़ देनी पड़ी। नौकर-चाकरों से काम करवाने में भी उसे वर खर्च करने पड़ते थे।

इस तरह मुनिवर गजशृङ्गी और शरगामी के बीच ऐसा दीर्घ संघर्ष चला कि धीरे-धीरे उसी में उन दोनों को कुछ मज़ा आने भी लगा हो तो ताज्जुब की कोई बात नहीं। शरगामी की मित्र-मण्डली अब उससे दूर रहने लगी। क्योंकि वह उन्हें खतरनाक आदमी सा जान पड़ने लगा। उसके नौकर-चाकर जितने थे, सब की जान हमेशा जोखिम में रहने लगी।

कभी-कभी शरगामी अपने नौकरों पर झल्ला उठता—'अरे! तू कहाँ मर गया! जाओ भाड़ में! उल्लू कहीं का! तू तो निरा गधा है!' इत्यादि। बस उसकी सभी बातें सत्य साबित हो जातीं और वे नौकर उसकी गालियाँ खाकर भयङ्कर यन्त्रणा के पाले पड़ जाते। अन्त में वरों के प्रभाव से वे मुक्त होते। इस सिलसिले में उन्हें भयानक पीड़ा तो सहनी ही पड़ती।

शरगामी के बारे में अजीब-अजीब खबरें सारे देश में फैल गईं। कोई राजकुमारी उससे ब्याह करने को राजी न हुई। किसी राजा को यह साहस न हुआ कि उसे अपना दामाद बनाए। राज-वंशों की स्त्रियाँ तो शरगामी को अपने आस-पास फटकने ही नहीं देतीं।

अन्त में शरगामी ने अपने मन-बहलाव के लिए तरह-तरह की क्रीडाओं का आविष्कार किया। उन खेलों में दूसरों की जरूरत ही न थी। उन्हें अकेले ही खेला जा सकता था।

अब तो इन खेलों में ही उसका सारा समय बीतने लगा। उधर मुनिवर के दिए हुए शापों पर बेकार पड़े थे। उनके द्वारा आनन्द पाने की कोई आशा उसे नहीं थी। मुनिवर गवल्गी अच्छा बदला ले रहे थे।

एक दिन शाम को शरगामी अकेले बैठे-बैठे अपने-आप पचीसी जैसा एक खेल खेल रहा था। उस खेल के लिए एक वर्गाकार तस्वीर होती थी, जिसमें अनेक छोटे-छोटे वर्ग होते थे। पाँसा फेंक कर प्यादे को उन वर्गों में से आगे बढ़ाना होता था। उस तस्वीर में कई जगह सीढ़ियाँ होती थीं और कई जगह साँप होते थे। प्यादा सीढ़ियों पर पहुँच जाता तो सीधे ऊपर चला जाता। साँप के मुँह में चला

जाता तो सीधे नीचे उसकी पूँछ तक उतर जाता।

आज न जाने, भाग्य कैसा था कि शरगामी का प्यादा सरासर ऊपर चलता गया। सीधे ऊपर याने वैकुण्ठ तक पहुँच गया। वह हरेक सीढ़ी पर चढ़ता गया। पर कहीं साँप के पाले नहीं पड़ा। शरगामी को बहुत आनन्द हुआ।

उसने धीरे से कहा—'ऐसा मौका फिर मिले तो!'

तुरन्त दूसरा खेल शुरू हुआ और उसे फिर वैसा ही मौका मिला। अन्त में उसने फिर कहा—'ऐसा मौका फिर मिले तो!' बस, ऐसे ही होता गया। इतने दिन बाद बेचारा शरगामी मुनिवर गजशृङ्गी के चंगुल में फँस गया था। उस के वर एक-एक करके खर्च होने लगे। वह बार बार खेलता और अन्त में कहता—'ऐसा मौका फिर मिले तो!'

इस तरह बार-बार यह मौका मिलता ही गया। वह अपने बिछाए जाल में आप ही फँस गया था।

बूढ़ा राजा चल बसा। नया राज-वंश आरम्भ हुआ। युग-युग बीत गए। कितने ही तूफान आए। कितने ही भूचाल आए। द्रविड़ का राज बार-बार उजड़ा और बसा। अन्त में माता पृथ्वी ने उसे अपनी छाती में छिपा लिया और अपने हरे आँचल से ढक दिया। फिर भी शरगामी अपने गुप्त-मन्दिर में बैठ कर वही खेल खेलता रहा और आज भी खेल ही रहा है। कोई नहीं जानता कि उसके ये वर कब चुक जाएँगे। शायद हिमालय पर बैठे हुए मुनिवर गजशृङ्गी जानते हों!

शरगामी जो खेल खेल रहा है, उसे 'वैकुण्ठ-पचीसी' कहते हैं। जिस तस्वीर पर यह खेल खेला जाता है, उसे 'परमपद-सोपान-चित्र' कहते हैं। यह खेल आज भी सारे दक्षिण में खेला जाता है।

लौटने की वजह

पुराने जमाने में किसी समय शेषनाग की शैया पर लेटे हुए भगवान विष्णु अचानक उठे और न जाने, कहाँ गायब हो गए ! देवी लक्ष्मी से उन्होंने कुछ कहा भी नहीं। इससे लक्ष्मी को बहुत अचरज हुआ और वे बहुत घबराईं। सारे बैकुण्ठ में कोलाहल मच गया। लक्ष्मी ने आखिर ब्रह्मा और शिव को खबर भेजी।

सब लोग यों घबरा ही रहे थे कि भगवान विष्णु लौट आए और चुपचाप यथावत् अपनी सेज पर लेट रहे। लक्ष्मी ने मन ही मन सोचा—'मुझसे बिना कहे-सुने ही चले जाने और फिर तुरन्त ही लौट आने की वजह क्या हो सकती है !' फिर उन को अपनी घबराहट की बात याद आई और चुप रह गईं। लेकिन महादेव जी, जो तब तक वहाँ पहुँच गए थे, चुप नहीं रह सके। वे पूछ बैठे—'बात क्या हुई !'

इस पर भगवान विष्णु बोले—'कोई खास बात तो नहीं थी। अच्छा सुनिए—'मुक्तेश्वर' गाँव में 'रामयोगी' नाम का एक भक्त रहता है। वह मार्जार-किशोर-न्याय के अनुसार बिलकुल मुझ पर ही भरोसा रखता है। रामयोगी के पास एक गाय है। रस्सी छुड़ा कर वह पड़ोसी बिशेसर के खेत में जा पड़ी। रामयोगी गाय को ढूँढता चला। सारे गाँव में इधर-उधर खोजा। अन्त में जब तक वह गाँव के बाहर खोजने चला, तब तक बिशेसर ने गाय को मार-पीट कर भगा दिया। रामयोगी ने यह देख कर कहना चाहा कि अबोध पशुओं पर हाथ नहीं उठाना चाहिए। इतनी सी बात पर बिशेसर को गुस्सा आ गया और उसी डण्डे से राम-योगी की मरम्मत करने लगा। बेचारा रामयोगी एक-एक मार सहते हुए 'नारायण ! माधव ! मुरारे !' कह कर मुझे पुकारने लगा।

मृदुला काश्यप

ज्यों ही उसकी पुकार मेरे कानों में पड़ी बस, मैं दौड़ पड़ा।'

'फिर इतनी जल्दी लौट क्यों आए!' सब ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

इस पर भगवान विष्णु कहने लगे— 'जब तक मैं पहुँचूँ, तब तक दृश्य ही बदल गया था। मेरे भक्त ने बिशेसर का डण्डा छीन कर उसी को पीटना शुरू कर दिया था। क्रोध के आवेश में वह मुझे भूल गया था और मर्कट-किशोर-न्याय के अनुसार काम करने लग गया था। मैंने सोचा कि इस झगड़े में अब मुझे पड़ने की जरूरत नहीं रह गई। बस, मैं तुरन्त लौट आया।'

यों किस्सा समाप्त होते ही सब लोग उठ कर चले गए। लेकिन यह किस्सा लक्ष्मी की समझ में ठीक-ठीक न आया। वे बोलीं— 'नाथ! आपने 'न्याय! न्याय!' कह कर कुछ बताया! मेरी समझ में ठीक-ठीक नहीं आया। ज़रा समझा तो दीजिए!'

इस पर भगवान कहने लगे—'मेरा भक्त पहले मार्जाल-किशोर-न्याय के अनुसार मुझ पर ही भरोसा रखता था। याने बिल्ली का बच्चा हमेशा अपनी माता पर ही भरोसा रखता है और माता सदा उसे सङ्कटों से बचाती रहती है। कहीं जाना भी होता है तो उसे दाँतों से पकड़ कर उठा ले जाती है। इसी से भक्त की पुकार सुनते ही मैं दौड़ा। लेकिन इतने में मेरा भक्त मार्जाल-किशोर-न्याय के अनुसार चलने लगा। याने बन्दर का बच्चा अपने ही बल पर माता से चिपटा रहता है। अगर ज़रा भी उसकी पकड़ ढीली पड़ी कि वह जोखिम में पड़ा। वह अपने ही हाथों पर भरोसा रखता है; इसलिए माता की उसके प्रति कोई ज़िम्मेदारी नहीं रहती। रामयोगी अपने ही बल पर बिशेसर से निपटने लगा। इसलिए मैं उलटे पाँव लौट आया।' भगवान की बातें सुन कर देवी लक्ष्मी बहुत खुश हुईं।

चन्दामामा पहेली

बाएँ से दाएँ :

1. दीपावली
3. आनन्द
5. निर्दोष
6. शरीफ
7. एहसान
9. शक
11. सस्ती
12. कुरा

1 दी		2	■	3		4 द
	■		■		■	
5			■	6		
■	■	■	■	■	■	■
7		8	■	9		10
	■		■		■	
11 स			■	12		म

ऊपर से नीचे :

1. पागल
2. पोतना
3. झलक
4. अकड़ना
7. पर
8. रात
9. चूनना
10. अन्तःपुर

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

दिसम्बर - प्रतियोगिता - [illegible]

*

दिसम्बर के फोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषक को १०) का पुरस्कार मिलेगा।

परिचयोक्तियाँ :

पहला फोटो : 'स्वावलम्ब'
दूसरा फोटो : 'स्वावलम्ब'

प्रेषक : देवसिंह रावत, गरुड़

ये पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ प्रेषक के नाम-सहित दिसम्बर के चन्दामामा में प्रकाशित होंगी। दिसम्बर के अङ्क के प्रकाशित होते ही पुरस्कार की रकम भेज दी जाएगी।

जनवरी की प्रतियोगिता के लिए बगल के पृष्ठ में देखिए।

एक अनिवार्य सूचना :

परिचयोक्तियाँ सिर्फ़ कार्ड पर ही भेजी जानी चाहिए। कागज़ पर लिख कर, लिफाफे के अन्दर रख कर भेजी जाने वाली परिचयोक्तियों पर कोई ध्यान न दिया जाएगा।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता

जनवरी १९५२ :: पारितोषक १०)

ऊपर के फोटो जनवरी के अङ्क में छापे जाएँगे। इनके लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए।

१. परिचयोक्ति फोटो के उपयुक्त हो।
२. उसमें एक या तीन-चार शब्द से ज्यादा न हो।
३. सबसे प्रधान विषय यह है कि पहले और दूसरे फोटो की परिचयोक्तियों में परस्पर सम्बन्ध हो।
४. एक व्यक्ति परिचयोक्तियों की एक ही जोड़ी भेज सकता है।
५. परिचयोक्तियाँ, पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर लिख कर भेजनी चाहिए।
६. परिचयोक्तियाँ १० नवम्बर के अन्दर हमें पहुँच जानी चाहिए। इसके बाद आने वाली परिचयोक्तियों की गिनती नहीं होगी।
७. प्राप्त परिचयोक्तियों की सर्वोत्तम जोड़ी के लिए १०) का पुरस्कार दिया जाएगा।

परिचयोक्तियाँ भेजने का पता :

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता

चन्दामामा प्रकाशन

पोस्ट बडपलनी : मद्रास-२६

रंगीन चित्र-कथा, चौथा चित्र

यों कुछ समय बीत गया। एक दिन किसी ने एक सोने की पेटी लाकर बादशाह की भेंट की। बादशाह ने उस पेटी को खोल कर देखा। उसमें उन्हें एक सोने की बनी, हीरे-जवाहरात जड़ी बुलबुल दिखाई दी। वह इतनी सुन्दर थी कि कुछ कहा नहीं जाता था। उसके गले में एक पुरजा बँधा हुआ था। उस पुरजे पर लिखा था—'फारस के बादशाह की बुलबुल को सारी दुनिया सराहती है। यह नाचीज़ उस बुलबुल की नकल है।' बादशाह ने यह पढ़ कर बुलबुल की गरदन पर एक कील दबाई। तुरन्त बुलबुल गाने लगी। उसका गाना ठीक असली बुलबुल के गाने जैसा था। तुरन्त बादशाह ने दोनों बुलबुलों को एक साथ गाने दिया। लेकिन दोनों में बहुत अन्तर था।

अब दरबारी सब लोग सोने की बुलबुल का गाना ही ज्यादा पसंद करने लगे। सोने की बुलबुल एक ही गाना बार बार गाती थी। दरबारी गवैये ने उसका गाना सुन कर कहा—'यह बुलबुल हम जो चाहते हैं वही गाती है। इसका गाना शास्त्रानुसार है। वह दूसरी बुलबुल अपने इच्छानुसार गाती है। उससे तो यही अच्छा गाती है।' एक बार इस बुलबुल ने एक ही गाना तैंतीस बार गाया। तब बादशाह ने कहा—'अच्छा! अब उस असली बुलबुल को ले आओ। उसका गाना सुनें।' झट नौकर उस बुलबुल को लाने गए। लेकिन बुलबुल वहाँ कहाँ थी? वह कभी उड़ गई थी। यह खबर सुन कर दरबारियों ने कहा—'ऐसी नमकहराम चिड़िया हमने कहीं नहीं देखी!' कुछ लोगोंने कहा—'वह अभागी थी! जाने दो, हमें क्या! हमारे लिए सोने की बुलबुल काफी है।' कुछ दिन बीत गए। बादशाह के सोने के कमरे में अब असली बुलबुल की जगह सोने की बुलबुल ने आसन जमा लिया। इस तरह एक साल बीत गया। सोने की बुलबुल हमेशा एक ही तरह के गाने गाया करती थी। धीरे धीरे कुछ लोग कहने लगे—'इस के गाने में जरूर कोई कमी है! सुनने में तो ठीक उसी बुलबुल के जैसा लगता है। मगर कहीं कसर रह जाती है।'

नाटे को लम्बा बनाना

इस तमाशे में आदमी को उसकी मामूली लम्बाई से ज्यादा लम्बा दिखाया जाता है। सोचो तो साढ़े पाँच फीट का आदमी अगर अचानक आठ फीट लम्बा बन गया तो कितने अचरज की बात होगी! लेकिन यह तमाशा करना कोई मुश्किल बात नहीं। नीचे का चित्र देखने से इसका रहस्य तुरन्त मालूम हो जाएगा।

पहले तो बाज़ीगर को चाहिए कि अपने मामूली कोट और पतलून से ज्यादा ढीले और लम्बे कोट-पतलून किसी गाढे कपड़े या ऊनी कपड़े से बनवाए। पतलून की टाँगों की पिछली तरफ थोड़ी दूर तक नहीं सिलाना चाहिए जिससे और एक आदमी को उनमें पैर रखने की गुञ्जाइश हो। यह तमाशा करने के लिए और दो आदमियों की मदद की ज़रूरत है। बाज़ीगर को मञ्च पर एक मेज़ रखवा कर उस पर एक इतना बड़ा मेज़पोश बिछाना चाहिए जो ज़मीन को छूता हो। उस मेज़पोश

की पिटारी

में दो बड़े-बड़े छेद होने चाहिए। उन दोनों को बेल-बूटे कढ़े हुए कपड़े से ढँक कर रखना चाहिए। मेज़ के ऊपर ही बाजीगर को अपनी जगह बनानी चाहिए। बाजीगर ऊपर बताए हुए कोट-पतलून पहन कर वहीं खड़ा होकर दर्शकों को पहली बार दिखाई देगा। वह अपने एक हाथ में एक लम्बी छड़ी पकड़े रहेगा। दूसरे हाथ से हैट उतार कर दर्शकों को प्रणाम करेगा। वह मेज़ पर बैठा होगा। उसके पैर धरती को छूने होंगे। वह दो-तीन बार पैरों को हिलाए-डुलाएगा जिससे दर्शकों को विश्वास हो कि वे सचमुच उसी के पैर हैं। बाजीगर ज्यों ही मेज़ पर बैठ जाएगा त्यों ही उसके पतलून की टाँगें जो बहुत लम्बी होंगी, नीचे तक लटकेंगी। मेजपोश जमीन को छूता होगा। इसलिए उसके पीछे छिपा हुआ दूसरा आदमी दर्शकों को दिखाई नहीं देगा। वे लोग तो यह सोच कर दङ्ग रह जाएंगे कि बाजीगर अच नक इतना लम्बा कैसे हो गया। लेकिन वास्तव में मेज़ पर बैठे हुए बाजीगर के पैर धरती पर टिके नहीं होंगे। वह खड़ा होता है दूसरे आदमी के घुटनों पर, जो कि अपने पैर बाजीगर के पतलून की टाँगों में से घुसा देता है।

जो इस सम्बन्ध में प्रोफेसर साहब से पत्र-व्यवहार करना चाहें वे उनको 'चन्दामामा' का उल्लेख करते हुए अंग्रेज़ी में लिखें।

प्रोफेसर पी. सी. सरकार, मैजीशियन, १२/३ ए. बमीर लेन,
बालीगञ्ज : कलकत्ता - १९.

मैं कौन हूँ ?

*

मैं चार अक्षरों का एक शब्द हूँ, जिसका अर्थ होता है 'हारा हुआ'। मेरा पहला अक्षर काट दोगे तो अर्थ होगा — 'शोभित'। मेरा तीसरा अक्षर काट दोगे तो अर्थ होगा — 'एक बर्तन'। मेरे अन्त के दोनों अक्षर काट दोगे तो अर्थ होगा — 'श्रेष्ठ'। मेरे आदि के दोनों अक्षर काट दोगे तो अर्थ होगा — 'जीता हुआ'। मेरा पहला और चौथा अक्षर काट दोगे तो अर्थ होगा — 'श्रेणी'। मेरे बीच के दोनों अक्षर काट दोगे तो अर्थ होगा — 'लाज'। क्या तुम बता सकते

हो कि मैं कौन हूँ !

अगर न बता सको तो जवाब के लिए ७२-वाँ पृष्ठ देखो !

बताओ तो ?

*

१. संसार का सबसे बड़ा हीरा कौन सा है ?

(क) कलिनान (ख) कोहिनूर (ग) निजाम

२. भारत का सबसे बड़ा फाटक कहाँ है ?

(क) देहली (ख) आगरा (ग) फतेहपुर सीकरी

३. संसार का सबसे बड़ा अजायबघर कहाँ है ?

(क) मास्को (ख) लन्दन (ग) न्यूयार्क

४. कादम्बरी किसने लिखी ?

(क) बाण भट्ट (ख) भारवि (ग) कालिदास

५. सबसे ऊँचा शहर किस देश में है ?

(क) चीन (ख) अमेरिका (ग) तिब्बत

६. टेलीवीज़न का आविष्कार किसने किया ?

(क) एडीसन (ख) बेर्ड (ग) बर्लाइन

अगर न बता सको तो जवाब के लिए ७२-वाँ पृष्ठ देखो !
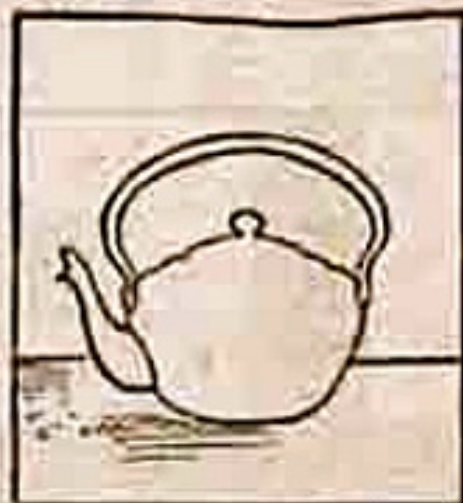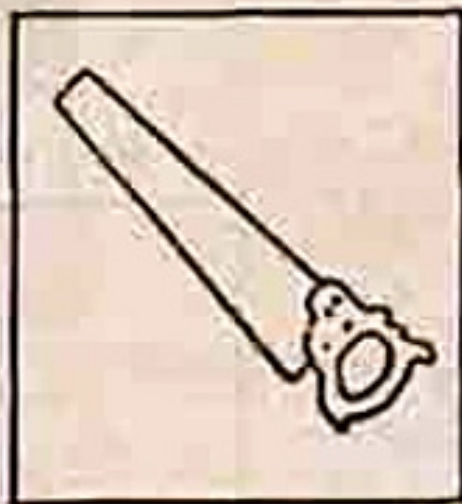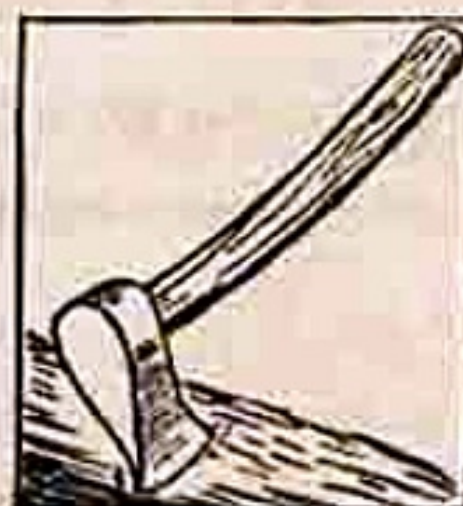
ऊपर नौ चित्र हैं। हरेक चित्र में हमारे चित्रकार ने एक-न-एक गलती कर दी है। क्या तुम बता सकते हो कि ये गलतियाँ कौन-कौन सी हैं? नहीं तो चन्दामामा के अगले अंक में देख कर जान लेना।

दिवाली

[श्री अशोक बी. ए.]

*

आती है हर साल दिवाली !
लाती है संग में खुशहाली ।
सभी मगन उस दिन लख पड़ते !
नये नये कपड़े हैं बनते ।

घर-घर होती खूब सफाई !
उस दिन बनती नई मिठाई ।
घर-घर देखो दीपक जलते !
बहुत दूर से सुन्दर लगते ।

ऊपर हँसते झिलमिल तारे !
नीचे हँसते दीपक सारे ।
छोटी-बड़ी कई फुलझड़ियाँ !
और पटाखों की कुछ लड़ियाँ !

धूम-धड़ाके से जलती हैं !
बच्चों को अच्छी लगती हैं ।
बच्चे उछले-उछले फिरते !
पैर न धरती पर हैं धरते ।

'अजयकुमार' 'अरुण' 'अन्नपूर्णा'
'कुमकुम' 'विनायक' 'करुणा,'
सबने मिल कर दीप जलाए !
घर, आंगन, छत, द्वार, सजाए ।

रहे रोज़ यदि यहाँ दिवाली !
रोज़ मनाएँ सब खुशहाली ।
खूब खा-खाकर सब हलवाई
सदा बनाएँ नई मिठाई ।

चन्दामामा पहेली का जवाब :

1 दी	वा	2 ली	■	3 आ	का	4 द
वा	■	प	■	भा	■	ह
5 ना	दा	न	■	6 स	ज	न
■	■	■	■	■	■	■
7 आ	भा	8 र	■	9 सं	दे	10 ह
वा	■	ज	■	चा	■	र
11 स	ज	नी	■	12 र	ह	म

'मैं कौन हूँ' का जवाब :
'परीक्षित'

'बताओ तो ?' का जवाब :
१. (क) ३. (ग) ५. (ग)
२. (ग) ४. (क) ६. (ख)

पिछले महीने के चन्दामामा के इकावनवें पृष्ठ में जो चित्र छपे थे उनमें गलतियाँ :

१. पेड़ी के पैर होने चाहिए ।
२. पतंग की पूंछ और बड़ी होनी चाहिए ।
३. छोटा कांटा १०-११ के बीच होना चाहिए ।
४. घण्टी में बजाने वाली घुण्डी होनी चाहिए ।
५. तितली की मूछ होनी चाहिए ।
६. उस डाल पर आम के फल होने चाहिए ।
७. मेंढक के पैर बतख के पैरों जैसे होने चाहिए ।
८. बन्दूक में घोड़ा होना चाहिए ।
९. हाथी के दांत मुंह के भीतर होने चाहिए ।